गणपतिखण्ड

नारदजीकी नारायणसे गणेशचरितके विषयमें जिज्ञासा, नारायणद्वारा शिव-पार्वतीके विवाह तथा स्कन्दकी उत्पत्तिका वर्णन, पार्वतीकी महादेवजीसे पुत्रोत्पत्तिके लिये प्रार्थना, शिवजीका उन्हें पुण्यक-व्रतके लिये प्रेरित करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण, (उनके नित्यसखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीलाको प्रकट करनेवाली) देवी सरस्वती तथा (उस लीलाको संकलित करनेवाले) व्यासजीको नमस्कार करके जय (पुराण-इतिहास आदि)-का पाठ करना चाहिये।

नारदजीने पूछा—भगवन्! जो सर्वोत्कृष्ट, मूढ़ोंके लिये ज्ञानकी वृद्धि करनेवाला तथा अमृतका उत्तम सागर है, उस अभीप्सित प्रकृतिखण्डको तो मैंने सुन लिया। अब मैं गणेशखण्डको, जो मनुष्योंके सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गलस्वरूप तथा गणेशजीके जन्म-वृत्तान्तसे परिपूर्ण है, सुनना चाहता हूँ। जगदीश्वर! भला, पार्वतीजीके शुभ उदरसे सुरश्रेष्ठ गणेशकी उत्पत्ति कैसे हुई? किस प्रकार पार्वतीदेवीने ऐसे पुत्रको प्राप्त किया? गणेशजी किस देवताके अंशसे उत्पन्न हुए थे? उन्हें जन्म क्यों लेना पड़ा? वे अयोनिज थे अथवा किसी योनिसे उत्पन्न हुए थे? उनका ब्रह्मतेज कैसा था? उनमें कितना पराक्रम था? उनकी तपस्या कैसी थी? वे कितने ज्ञानी थे तथा उनका यश कितना निर्मल था? जगदीश्वर नारायण, शम्भु और ब्रह्माके रहते हुए सम्पूर्ण विश्वमें उनकी अग्रपूजा क्यों होती है? वे हाथीके मुखवाले एकदन्त तथा विशाल तोंदवाले कैसे हो गये? महाभाग! पुराणोंमें उनके रहस्यमय जन्म-वृत्तान्तका वर्णन किया गया है। आप उस परम मनोहर तथा अत्यन्त विस्तृत चरित्रको पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मुझे परम कौतूहल हो रहा है।

श्रीनारायणने कहा—नारद! मैं उस परम अद्भुत रहस्यका वर्णन करता हूँ, सुनो! वह पाप-संतापका हरण करनेवाला, सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाशक, समस्त मङ्गलोंका दाता, साररूप, निखिल श्रुतियोंके लिये मनोहर सुखप्रद, मोक्षका बीज तथा पापोंका मूलोच्छेद करनेवाला है। दैत्योंद्वारा पीड़ित हुए देवताओंकी तेजोराशिसे उत्पन्न हुई देवीने दैत्यसमुदायका संहार कर डाला। तत्पश्चात् वे दक्षकी कन्या होकर प्रकट हुईं। उस समय उन देवीका नाम सती था। उन्होंने अपने स्वामी (शिवजी)-की निन्दा होनेके कारण योगधारणाद्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया और फिर शैलराजकी प्रिय पत्नी (मेना)-के पेटसे जन्म लिया। पर्वतराजने उन पार्वतीजीका विवाह शंकरजीके साथ कर दिया। तब महादेवजी उन्हें साथ लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक शंकर-पार्वतीका विहार चलता रहा। जब देवताओंने आकर विहारसे विरत होनेके लिये उनसे प्रार्थना की, तब भगवान् शंकर विरत हो गये। उस समय महादेवजीका शुक्र भूमिपर गिर पड़ा, जिससे स्कन्द—कार्तिकेय उत्पन्न हुए। तब पार्वतीजीने श्रीशंकरजीसे एक श्रेष्ठ पुत्रके लिये प्रार्थना की।

इसपर महादेवजीने कहा—पार्वति! मैं उपाय बतलाता हूँ, सुनो। उससे तुम्हारा परम

कल्याण होगा; क्योंकि त्रिलोकीमें उपाय करनेसे कार्यसिद्धि होती ही है। मैं तुमसे जिस उपायका वर्णन करूँगा, वह सम्पूर्ण अभीष्ट-सिद्धिका बीजरूप, परम मङ्गलदायक तथा मनको हर्ष प्रदान करनेवाला है। वरानने! तुम श्रीहरिकी आराधना करके व्रत आरम्भ करो। एक वर्षतक इसका अनुष्ठान करना होगा। इस व्रतका नाम पुण्यक है। यह महाकठोर बीज, कल्पतरुके समान अभीष्ट सिद्ध करनेवाला, उत्कृष्ट, सुखदायक, पुण्यदाता, साररूप, पुत्रप्रद और समस्त सम्पत्तियोंको देनेवाला है। प्रिये! जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवताओंमें श्रीहरि, वैष्णवोंमें मैं (शिव), देवियोंमें तुम, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें पुष्कर, पुष्पोंमें पारिजात, पत्रोंमें तुलसीदल, पुण्य प्रदान करनेवालोंमें एकादशी तिथि, वारोंमें पुण्यप्रद रविवार, मासोंमें मार्गशीर्ष, ऋतुओंमें वसन्त, वत्सरोंमें संवत्सर, युगोंमें कृतयुग, पूजनीयोंमें विद्या पढ़ानेवाले गुरु, गुरुजनोंमें माता, आप्तजनोंमें साध्वी पत्नी, विश्वस्तोंमें मन, धनोंमें रत्न, प्रियजनोंमें पति, बन्धुजनोंमें पुत्र, वृक्षोंमें कल्पतरु, फलोंमें आमका फल, वर्षोंमें भारतवर्ष, वनोंमें वृन्दावन, स्त्रियोंमें शतरूपा, पुरियोंमें काशी, तेजस्वियोंमें सूर्य, सुखदाताओंमें चन्द्रमा, रूपवानोंमें कामदेव, शास्त्रोंमें वेद, सिद्धोंमें कपिल मुनि, वानरोंमें हनुमान्, क्षेत्रोंमें ब्राह्मणका मुख, यश प्रदान करनेवालोंमें विद्या तथा मनोहारिणी कविता, व्यापक वस्तुओंमें आकाश, शरीरके अङ्गोंमें नेत्र, विभवोंमें हरिकथा, सुखोंमें हरिस्मरण, स्पर्शोंमें पुत्रका स्पर्श, हिंसकोंमें दुष्ट, पापोंमें असत्यभाषण, पापियोंमें पुंश्चली स्त्री, पुण्योंमें सत्यभाषण, तपस्याओंमें श्रीहरिकी सेवा, गव्य पदार्थोंमें घृत, तपस्वियोंमें ब्रह्मा, भक्ष्य वस्तुओंमें अमृत, अन्नोंमें धान, पवित्र करनेवालोंमें जल, शुद्ध पदार्थोंमें अग्नि, तैजस वस्तुओंमें सुवर्ण, मीठे पदार्थोंमें प्रियभाषण, पक्षियोंमें गरुड़, हाथियोंमें इन्द्रका वाहन ऐरावत, योगियोंमें कुमार (सनत्कुमार आदि), देवर्षियोंमें नारद, गन्धर्वोंमें चित्ररथ, बुद्धिमानोंमें बृहस्पति, श्रेष्ठ कवियोंमें शुक्राचार्य, काव्योंमें पुराण, स्रोतोंमें समुद्र, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, लाभोंमें मुक्ति, सम्पत्तियोंमें हरिभक्ति, पवित्रोंमें वैष्णव, वर्णोंमें ॐकार, मन्त्रोंमें विष्णुमन्त्र, बीजोंमें प्रकृति, विद्वानोंमें वाणी, छन्दोंमें गायत्री छन्द, यक्षोंमें कुबेर, सर्पोंमें वासुकिनाग, पर्वतोंमें तुम्हारे पिता हिमवान्, गौओंमें सुरभि, वेदोंमें सामवेद, तृणोंमें कुश, सुखप्रदोंमें लक्ष्मी, शीघ्रगामियोंमें मन, अक्षरोंमें अकार, हितैषियोंमें पिता, यन्त्रोंमें शालग्रामशिला, पशु-अस्थियोंमें विष्णुपञ्जर, चौपायोंमें सिंह, जीवधारियोंमें मनुष्य, इन्द्रियोंमें मन, रोगोंमें मन्दाग्नि, बलवानोंमें शक्ति, शक्तिमानोंमें अहंकार, स्थूलोंमें महाविराट्, सूक्ष्मोंमें परमाणु, अदितिपुत्रोंमें इन्द्र, दैत्योंमें बलि, साधुओंमें प्रह्लाद, दानियोंमें दधीचि, अस्त्रोंमें ब्रह्मास्त्र, चक्रोंमें सुदर्शनचक्र, मनुष्योंमें राजा रामचन्द्र और धनुर्धारियोंमें लक्ष्मण श्रेष्ठ हैं तथा जैसे श्रीकृष्ण सर्वाधार, समस्त जीवोंद्वारा सेवनीय, सबके बीजस्वरूप, सर्वाभीष्टप्रदाता और सम्पूर्ण वस्तुओंके साररूप हैं, उसी प्रकार यह पुण्यक-व्रत सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ है।

इसलिये महाभागे! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो, यह तीनों लोकोंमें दुर्लभ है। इस व्रतके पालनसे ही तुम्हें सम्पूर्ण वस्तुओंका साररूप पुत्र प्राप्त होगा। इस व्रतके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके मनोरथ सिद्ध करनेवाले श्रीकृष्णकी आराधना की जाती है, जिनके सेवनसे मनुष्य अपने करोड़ों पितरोंके साथ मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य विष्णुमन्त्र ग्रहण करके श्रीहरिकी सेवा करता है, वह भारतवर्षमें अपने जन्म-धारणको सफल कर लेता है। वह अपने पूर्वजोंका उद्धार करके निश्चय ही वैकुण्ठमें जाता है और श्रीकृष्णका पार्षद होकर सुखपूर्वक आनन्दका उपभोग करता है। वह भक्त अपने भाई, बन्धु-बान्धव, भृत्य, संगी-साथी तथा अपनी स्त्रीका उद्धार करके श्रीहरिके परमपदको प्राप्त हो जाता है। इसलिये गिरिजे! तुम इस परम दुर्लभ विष्णुमन्त्रको ग्रहण करो और उस व्रतकालमें इसी मन्त्रका जप करो; क्योंकि यह पितरोंकी मुक्तिका कारण है। यों कहकर भगवान् शंकर गिरिजाके साथ तुरंत ही गङ्गा-तटपर गये और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कवच तथा स्तोत्रसहित मनोहर विष्णुमन्त्र पार्वतीजीको बतलाया। मुने! तत्पश्चात् उन्होंने पार्वतीसे पूजाकी विधि एवं नियमोंका भी वर्णन किया।

(अध्याय १—३)

शिवजीद्वारा पार्वतीसे पुण्यक-व्रतकी सामग्री, विधि तथा फलका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! पुण्यक-व्रतका विधान सुनकर पार्वतीका मन प्रसन्न हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने व्रतकी सम्पूर्ण विधिके विषयमें प्रश्न करना आरम्भ किया।

पार्वती बोलीं—नाथ! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, करुणाके सागर तथा परात्पर हैं। दीनबन्धो! इस व्रतका सारा विधान मुझे बतलाइये। प्रभो! कौन-कौन-से द्रव्य और फल इस व्रतमें उपयोगी होते हैं? इसका समय क्या है? किस नियमका पालन करना पड़ता है? इसमें आहारका क्या विधान है? और इसका क्या फल होता है? यह सब मुझ विनम्र सेविकासे वर्णन कीजिये। साथ ही एक उत्तम पुरोहित, पुष्प एकत्रित करनेके लिये ब्राह्मण और सामग्री जुटानेके लिये भृत्योंको भी नियुक्त कर दीजिये। इनके अतिरिक्त और भी जो व्रतोपयोगी वस्तुएँ हैं, जिन्हें मैं नहीं जानती हूँ, वह सब भी एकत्र करा दीजिये; क्योंकि स्त्रियोंके लिये स्वामी ही सब कुछ प्रदान करनेवाला होता है। स्त्रियोंकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—कौमार, युवा और वृद्ध। कौमार-अवस्थामें पिता, युवावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र सब तरहसे पालन करनेवाले होते हैं। प्राणनाथ! आप तो सर्वात्मा, ऐश्वर्यशाली, सर्वसाक्षी और सर्वज्ञ हैं, अत: अपने आत्माकी निर्वृतिका कारणभूत एक श्रेष्ठ पुत्र मुझे प्रदान कीजिये। भगवन्! यह तो मैंने अपनी जानकारीके अनुरूप आप-जैसे महात्मासे निवेदन किया है। आप तो सबके आन्तरिक अभिप्रायके ज्ञाता और परम ज्ञानी हैं। भला, मैं आपको क्या समझा सकती हूँ? यों कहकर पार्वतीने प्रेमपूर्वक अपने पतिदेवके चरणोंमें माथा टेक दिया। तब कृपासिन्धु भगवान् शिव कहनेको उद्यत हुए।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! मैं इस व्रतकी विधि, नियम, फल और व्रतोपयोगी द्रव्यों तथा फलोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। इस व्रतके हेतु मैं फल-पुष्प लानेके लिये सौ शुद्ध ब्राह्मणोंको, सामग्री जुटानेके निमित्त सौ भृत्यों और बहुसंख्यक दासियोंको तथा पुरोहितके स्थानपर सनत्कुमारको, जो सम्पूर्ण व्रतोंकी विधिके ज्ञाता, वेद-वेदान्तके पारंगत विद्वान्, हरिभक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ, उत्तम

ज्ञानी और मेरे ही समान हैं, नियुक्त करता हूँ। तुम इन्हें ग्रहण करो। देवि! शुद्ध समय आनेपर परम नियमपूर्वक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। प्रिये! माघमासकी शुक्ल त्रयोदशीके दिन इस व्रतका आरम्भ शुभ होता है। उत्तम व्रतीको चाहिये कि वह व्रतारम्भके पूर्वदिन उपवास करे और शरीरको अत्यन्त निर्मल करके यत्नपूर्वक वस्त्रको धोकर स्वच्छ कर ले। फिर दूसरे दिन अरुणोदय-वेलामें शय्यासे उठ जाय और मुखको शुद्ध करके निर्मल जलमें स्नान करे। तत्पश्चात् हरिस्मरणपूर्वक आचमन करके पवित्र हो जाय। फिर भक्तिसहित श्रीहरिको अर्घ्य देकर शीघ्र ही घर लौट आये। वहाँ धुली हुई धोती और चादर धारण करके पवित्र आसनपर बैठे। फिर आचमन और तिलक करके अपना नित्यकर्म समाप्त करे। तत्पश्चात् पहले प्रयत्नपूर्वक पुरोहितका वरण करके स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करे। फिर वेदविहित संकल्प करके इस व्रतका अनुष्ठान आरम्भ करे।

तदनन्तर सौन्दर्य, नेत्रदीप्ति, विविध अङ्गोंके सौन्दर्य, पति-सौभाग्य आदिके लिये विभिन्न वस्तुओंके संख्यासहित समर्पण करनेकी बात कहकर शंकरजी पुनः बोले—देवि! पुत्र-प्राप्तिके लिये कूष्माण्ड, नारियल, जम्बीर तथा श्रीफल—इन फलोंको श्रीहरिके अर्पण करना चाहिये। असंख्य जन्मपर्यन्त स्वामीके धनकी वृद्धिके निमित्त यत्नपूर्वक श्रीकृष्णको एक लाख रत्नेन्द्रसार समर्पित करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि व्रतकालमें सम्पत्तिकी वृद्धिके हेतु झाँझ-मजीरा आदि नाना प्रकारके उत्तम बाजे बजाकर श्रीहरिको सुनावे। स्वामीकी भोगवृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक श्रीहरिको मनोहर खीर और शक्करयुक्त घी तथा पूड़ीका भोग प्रदान करे। हरिभक्तिकी विशेष उन्नतिके लिये स्वेच्छानुसार सुगन्धित पुष्पोंकी एक लाख माला, जो टूटी हुई न हों, भक्तिपूर्वक श्रीहरिको अर्पित करनी चाहिये। दुर्गे! श्रीकृष्णकी प्रसन्नता-प्राप्तिके हेतु नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं मधुर नैवेद्योंका भोग लगाना चाहिये। सुव्रते! इस व्रतमें श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिसहित तुलसीदलसे संयुक्त अनेक प्रकारके पुष्प निवेदन करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह व्रतकालमें जन्म-जन्मान्तरमें अपने धन-धान्यकी समृद्धिके लिये प्रतिदिन एक सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे। देवि! प्रतिदिन पूजनकालमें पुष्पोंसे भरी हुई सौ अञ्जलियाँ समर्पित करे तथा भक्तिकी वृद्धिके लिये सौ बार प्रणाम करना चाहिये। सुव्रते! व्रतकालमें छः मासतक हविष्यान्न, पाँच मासतक फलाहार और एक पक्षतक हविका भोजन करे तथा एक पक्षतक केवल जल पीकर रहना चाहिये। अग्निदेवके लिये सौ अखण्ड रत्नदीपोंका दान करना चाहिये। रात्रिमें कुशासन बिछाकर नित्य जागरण करना उत्तम है। व्रतीको चाहिये कि व्रतकी शुद्धिके लिये स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियानिष्पत्ति—इन अष्टविध मैथुनोंका परित्याग कर दे।

देवि! इस प्रकार व्रतके भलीभाँति पूर्ण होनेपर तदनन्तर व्रतोद्यापन करना चाहिये। उस समय तीन सौ साठ डलियाएँ, जो वस्त्रोंसे आच्छादित तथा भोजनके पदार्थ, यज्ञोपवीत और मनोहर उपहारोंसे सजी हुई हों, दान करनी चाहिये। एक हजार तीन सौ साठ ब्राह्मणोंको भोजन तथा एक हजार तीन सौ साठ तिलकी आहुतियाँ देनेका विधान है। फिर व्रत समाप्त हो जानेपर विधिपूर्वक एक हजार तीन सौ साठ स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त व्रत-समाप्तिके दिन दूसरी दक्षिणा भी बतलाऊँगा। देवि! इस व्रतका फल यही है कि श्रीहरिमें भक्ति दृढ़ हो जाती है। श्रीहरिके सदृश तीनों भुवनोंमें विख्यात पुत्र उत्पन्न होता है और सौन्दर्य, पतिसौभाग्य, ऐश्वर्य और अतुल धनकी

प्राप्ति होती है। महेश्वरि! यह व्रत प्रत्येक जन्ममें समस्त वाञ्छित सिद्धियोंका बीज है, जिसका मैंने इस प्रकार वर्णन किया है; अत: देवि! तुम भी इस व्रतका अनुष्ठान करो। साध्वि! तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। यों कहकर शिवजी चुप हो गये।
(अध्याय ४)

पुण्यक-व्रतकी माहात्म्य-कथाका कथन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार व्रतके विधानको सुनकर दुर्गाका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। तत्पश्चात् उन्होंने अपने स्वामी शिवजीसे दिव्य एवं शुभकारिणी व्रत-कथाके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की।

श्रीपार्वतीजीने पूछा—नाथ! यह व्रत तथा इसका फल और विधान बड़ा ही अद्भुत है। भला, किसने इस व्रतको प्रकाशित किया है? इसकी श्रेष्ठ कथाका वर्णन कीजिये।

अथ व्रतकथा

श्रीमहादेवजी बोले—प्रिये! मनुकी पत्नी शतरूपा, जो पुत्रके दु:खसे दु:खी थी, ब्रह्मलोकमें आकर ब्रह्माजीसे बोली।

शतरूपाने कहा—ब्रह्मन्! आप जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले तथा सृष्टिके कारणोंके भी कारण हैं। अत: आप मुझे यह बतलानेकी कृपा करें कि किस उपायसे वन्ध्याको पुत्र उत्पन्न हो सकता है; क्योंकि ब्रह्मन्! उसका जन्म, ऐश्वर्य और धन सब निष्फल ही होता है। पुत्रवानोंके घरमें पुत्रके बिना अन्य किसी वस्तुकी शोभा नहीं होती। तपस्या और दानसे उत्पन्न हुआ पुण्य जन्मान्तरमें सुखदायक होता है, परंतु पुत्र पिताको (इसी जन्ममें) सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करता है। निश्चय ही पुत्र 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेका हेतु होता है। ब्रह्मन्! आप पुत्रतापसे संतप्त हुई मुझ अबलाको पुत्र-प्राप्तिका उपाय बतला दें, तभी कल्याण है; अन्यथा मैं पतिके साथ वनमें चली जाऊँगी। आप प्रजाको धारण करनेवाली पृथ्वी, धन, ऐश्वर्य और राज्य आदि ग्रहण कीजिये; क्योंकि तात! हम दोनों पुत्रहीनोंको पुत्रके बिना इन सबसे क्या प्रयोजन है? साक्षात् ब्रह्माजीसे यों कहकर शतरूपा फूट-फूटकर रुदन करने लगी। तब उसकी ओर देखकर कृपालु ब्रह्माजीने कहा।

ब्रह्माजी बोले—वत्से! जो समस्त ऐश्वर्य आदिका कारणरूप, सम्पूर्ण मनोरथोंका दाता तथा शुभकारक है, उस सुखदायक पुत्र-प्राप्तिके उपायका वर्णन करता हूँ, सुनो। सुव्रते! माघमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन शुद्ध कालमें सर्वस्व प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णकी आराधना करके इस उत्तम पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। कण्वशाखामें इस व्रतका वर्णन किया गया है। इसे पूरे वर्षभरतक करना चाहिये। यह सारी अभीष्ट-सिद्धियोंका प्रदाता तथा सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाशक है। व्रतकालमें वेदोक्त द्रव्योंका दान करना चाहिये। शुभे! तुम भी इस व्रतका अनुष्ठान करके विष्णुके समान पराक्रमी पुत्र प्राप्त करो।

ब्रह्माजीका कथन सुनकर शतरूपाने इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया, जिससे उन्हें प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र प्राप्त हुए। देवहूतिने इस पुण्यप्रद एवं शुभ पुण्यक-व्रतको करके कपिल नामक पुत्र प्राप्त किया, जो सर्वश्रेष्ठ सिद्ध तथा नारायणके अंशसे प्रकट हुए थे। शुभलक्षणा अरुन्धतीने इस व्रतको करके शक्तिको पुत्र-रूपमें पाया। शक्ति-पत्नीको इस व्रतके पालनसे पराशर नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। अदितिने इस व्रतका अनुष्ठान करके वामन नामक पुत्र प्राप्त किया। ऐश्वर्यशालिनी शचीने इस व्रतको

करके जयन्त नामक पुत्रको जन्म दिया। इस व्रतके करनेसे उत्तानपादकी पत्नीने ध्रुवको और कुबेरकी भार्याने नलकूबरको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। इस उत्तम व्रतके पालनसे सूर्यपत्नीको मनु तथा अत्रिपत्नीको चन्द्रमा पुत्ररूपमें मिले। अङ्गिराकी पत्नीने भी इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके प्रभावसे उनके पुत्र बृहस्पति हुए, जो देवताओंके आचार्य कहलाते हैं। भृगुपत्नीने इस व्रतका पालन करके शुक्रको पुत्ररूपमें प्राप्त किया, जो नारायणके अंश और समस्त तेजस्वियोंमें परमोत्कृष्ट हैं। ये ही दैत्योंके गुरु हुए। देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे व्रतोंमें उत्तम पुण्यक-व्रतका वर्णन कर दिया। कल्याणमयी गिरिराजनन्दिनि! तुम भी इस व्रतको करो। शुभे! यह व्रत राजेन्द्रपत्नियोंके लिये सुखसाध्य है, देवियोंके लिये सुखप्रद है और साध्वी नारियोंके लिये तो यह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। महासाध्वि! इस व्रतके प्रभावसे सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर स्वयं गोपाङ्गनेश्वर श्रीकृष्ण तुम्हारे पुत्र होंगे।

नारद! यों कहकर शंकरजी चुप हो गये। तत्पश्चात् परम प्रसन्न हुई पार्वतीदेवीने शंकरजीकी आज्ञासे उस व्रतका अनुष्ठान किया। इस प्रकार मैंने तुमसे गणेशजीके जन्मका कारण, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और साररूप है, वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ५)

पार्वतीजीका व्रतारम्भके लिये उद्योग, ब्रह्मादि देवों तथा ऋषि आदिका आगमन, शिवजीद्वारा उनका सत्कार तथा श्रीविष्णुसे पुण्यक-व्रतके विषयमें प्रश्न, श्रीविष्णुका व्रतके माहात्म्य तथा गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन करना

नारदजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! पार्वतीजीने पतिकी आज्ञासे किस प्रकार उस शुभदायक व्रतका पालन किया था, वह मुझे बतलाइये। ब्रह्मन्! तत्पश्चात् उत्तम व्रतवाली पार्वतीके द्वारा उस व्रतके पूर्ण किये जानेपर गोपीश श्रीकृष्णने किस प्रकार जन्म धारण किया, वह मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

श्रीनारायणने कहा—नारद! शिवजी यद्यपि स्वयं ही तपके विधाता हैं तथापि वे पार्वतीसे व्रतकी विधि तथा उसकी दिव्य कथाका वर्णन करके तप करनेके लिये चले गये। यद्यपि शिवजी श्रीहरिके ही पृथक् स्वरूप हैं तथापि वे वहाँ श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न होकर उन्हींके ध्यानमें तत्पर हो श्रीहरिकी भावना करने लगे। वे सनातनदेव ज्ञानानन्दमें निमग्न तथा परमानन्दसे परिपूर्ण थे और प्रकटरूपसे विष्णुमन्त्रके स्मरणमें इस प्रकार तल्लीन थे कि उन्हें रात-दिनका आना-जाना ज्ञात नहीं होता था। इधर शुभदायिनी पार्वतीदेवीने पतिके आज्ञानुसार हर्षपूर्ण मनसे व्रतकार्यके लिये ब्राह्मणों तथा भृत्योंको प्रेरित किया और व्रतोपयोगी सभी वस्तुओंको मँगवाकर शुभ मुहूर्तमें व्रत करना आरम्भ किया। उसी समय ब्रह्माके पुत्र भगवान् सनत्कुमार वहाँ आ पहुँचे। वे तेजके मूर्तिमान् राशि थे और ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। तदनन्तर पत्नीसहित ब्रह्मा भी प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। अत्यन्त भयभीत हुए भगवान् महेश्वर भी वहाँ आये। नारद! जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं तथा जगत्के शासक और पालन-पोषण करनेवाले हैं, जिनके गलेमें वनमाला लटकती रहती है, जो रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित हैं तथा जिनके शरीरका वर्ण श्याम है, वे चार भुजाधारी भगवान् विष्णु लक्ष्मी तथा पार्षदोंके साथ बहुत-सी सामग्री लिये हुए रत्नजटित

विमानपर आरूढ़ हो वहाँ उपस्थित हुए। तत्पश्चात् सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, क्रतु, हंस, वोढु, पञ्चशिख, आरुणि, यति, सुमति, अनुयायियोंसहित वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, भृगु, अङ्गिरा, अगस्त्य, प्रचेता, दुर्वासा, च्यवन, मरीचि, कश्यप, कण्व, जरत्कारु, गौतम, बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त, सौभरि, जाबालि, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, गोकामुख, वक्ररथ, पारिभद्र, पराशर, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, मार्कण्डेय, मृकण्डु, पुष्कर, लोमश, कौत्स, वत्स, दक्ष, बालाग्नि, अघमर्षण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, शाकटायन, शङ्कु, आपिशलि, शाकल्य, शङ्ख—ये तथा और भी बहुत-से मुनि शिष्योंसहित वहाँ पधारे। मुने! धर्मपुत्र नर-नारायण भी आये। पार्वतीके उस व्रतमें दिक्पाल, देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और गणोंसहित सभी पर्वत भी उपस्थित हुए। शैलराज हिमालय, जो अनन्त रत्नोंके उद्भवस्थान हैं, कौतुकवश अपनी कन्याके व्रतमें रत्नाभरणोंसे अलंकृत हो पत्नी, पुत्र, गण और अनुयायियोंसहित पधारे। उनके साथ नाना प्रकारके द्रव्योंसे संयुक्त बहुत बड़ी सामग्री थी। उसमें व्रतोपयोगी मणि-माणिक्य और रत्न थे। अनेक प्रकारकी ऐसी वस्तुएँ थीं, जो संसारमें दुर्लभ हैं। एक लाख गज-रत्न, तीन लाख अश्व-रत्न, दस लाख गो-रत्न, एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, चार लाख मुक्ता, एक सहस्र कौस्तुभमणि और अत्यन्त स्वादिष्ट तथा मीठे पदार्थोंके एक लाख भार थे। इसके अतिरिक्त पार्वतीके व्रतमें ब्राह्मण, मनु, सिद्ध, नाग और विद्याधरोंके समुदाय तथा संन्यासी, भिक्षुक और बंदीगण भी आये। उस समय कैलासपर्वतके राजमार्गोंपर चन्दनका छिड़काव किया गया था। पद्मरागमणिके बने हुए शिवमन्दिरमें आमके पल्लवोंकी बंदनवारें बँधी थीं। कदलीके खंभे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह दूब, धान्य, पत्ते, खील, फल और पुष्पोंसे सुसज्जित था। उपस्थित सारा जन-समुदाय आनन्दपूर्वक उसे निहार रहा था। सारे कैलासवासी परमानन्दमें निमग्न थे।

तदनन्तर शंकरजीने समागत अतिथियोंको ऊँचे-ऊँचे सिंहासनोंपर बैठाकर उनका आदर-सत्कार किया। पार्वतीके इस व्रतमें इन्द्र दानाध्यक्ष, कुबेर कोषाध्यक्ष, स्वयं सूर्य आदेश देनेवाले और वरुण परोसनेके कामपर नियुक्त थे। उस समय दही, दूध, घृत, गुण, चीनी, तेल और मधु आदिकी लाखों नदियाँ बहने लगी थीं। इसी प्रकार गेहूँ, चावल, जौ और चिउरे आदिके पहाड़ों-के-पहाड़ लग गये थे। महामुने! पार्वतीके व्रतमें कैलास पर्वतपर सोना, चाँदी, मूँगा और मणियोंके पर्वत-सरीखे ढेर लगे हुए थे। लक्ष्मीने भोजन तैयार किया था, जिसमें परम मनोहर खीर, पूड़ी, अगहनीका चावल और घृतसे बने हुए अनेकविध व्यञ्जन थे। देवर्षिगणोंके साथ स्वयं नारायणने भोजन किया। उस समय एक लाख ब्राह्मण परोसनेका काम कर रहे थे। (भोजन कर लेनेके पश्चात्) जब वे रत्नसिंहासनोंपर विराजमान हुए, तब परम चतुर लाखों ब्राह्मणोंने उन्हें कर्पूर आदिसे सुवासित पानके बीड़े समर्पित किये। ब्रह्मन्! देवर्षियोंसे भरी हुई उस सभामें जब क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु रत्नसिंहासनपर आसीन थे, प्रसन्न मुखवाले पार्षद उनपर श्वेत चँवर डुला रहे थे, ऋषि, सिद्ध तथा देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे, वे गन्धर्वोंके मनोहर गीत सुन रहे थे, उसी समय ब्रह्माकी प्रेरणासे शंकरजीने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन ब्रह्मेशसे अपने अभीष्ट कर्तव्य व्रतके विषयमें प्रश्न किया।

श्रीमहादेवजीने पूछा—प्रभो! आप श्रीनिवास, तप:स्वरूप, तपस्याओं और कर्मोंके फलदाता, सबके द्वारा पूजित, सम्पूर्ण व्रतों, जप-यज्ञों और पूजनोंके बीजरूपसे वाञ्छाकल्पतरु और पापोंका हरण करनेवाले हैं। नाथ! मेरी एक प्रार्थना

सुनिये। ब्रह्मन्! पुत्रशोकसे पीड़ित हुई पार्वतीका हृदय दु:खी हो गया है, अत: वह पुत्रकी कामनासे परमोत्तम पुण्यक-व्रत करना चाहती है। वह सुव्रता व्रतके फलस्वरूपमें उत्तम पुत्र और पति-सौभाग्यकी याचना कर रही है। इनके बिना उसे संतोष नहीं है। प्राचीन कालमें इस मानिनीने अपने पिताके यज्ञमें मेरी निन्दा होनेके कारण अपने शरीरका त्याग कर दिया था और अब पुन: हिमालयके घरमें जन्म धारण किया है। यह सारा वृत्तान्त तो आप जानते ही हैं, आप सर्वज्ञको मैं क्या बतलाऊँ। तत्त्वज्ञ! इस विषयमें आपकी क्या आज्ञा है? आप परिणाममें शुभप्रदायिनी अपनी वह आज्ञा बतलाइये। नाथ! मैंने सब कुछ निवेदन कर दिया है, अब जो कर्तव्य हो, उसे बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि परामर्शपूर्वक किया हुआ सारा कार्य परिणाममें सुखदायक होता है।

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! उस सभामें यों कहकर भगवान् शंकरने कमलापति विष्णुकी स्तुति की और फिर ब्रह्माके मुखकी ओर देखकर वे चुप हो गये। शंकरजीका वचन सुनकर जगदीश्वर विष्णु ठठाकर हँस पड़े और हितकारक तथा नीतिपूर्ण वचन कहने लगे।

श्रीविष्णुने कहा—पार्वतीश्वर! आपकी पत्नी सती संतान-प्राप्तिके लिये जिस उत्तम पुण्यक-व्रतको करना चाहती हैं, वह व्रतोंका सारतत्त्व, स्वामि-सौभाग्यका बीज, सबके द्वारा असाध्य, दुराराध्य, सम्पूर्ण अभीष्ट फलका दाता, सुखदायक, सुखका सार तथा मोक्षप्रद है। जो सबके आत्मा, साक्षीस्वरूप, ज्योतिरूप, सनातन, आश्रयरहित, निर्लिप्त, उपाधिहीन, निरामय, भक्तोंके प्राणस्वरूप, भक्तोंके ईश्वर, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, दूसरोंके लिये दुराराध्य, परंतु भक्तोंके लिये सुसाध्य, भक्तिके वशीभूत, सर्वसिद्ध और कलारहित हैं, ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिन पुरुषकी कलाएँ हैं, महान् विराट् जिनका एक अंश है, जो निर्लिप्त, प्रकृतिसे परे, अविनाशी, निग्रहकर्ता, उग्रस्वरूप, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रहस्वरूप, ग्रहोंमें उग्र ग्रह और ग्रहोंका निग्रह करनेवाले हैं, वे भगवान् आपके बिना करोड़ों जन्मोंमें भी साध्य नहीं हो सकते।

सूर्य, शिव, नारायणी माया, कला आदिकी दीर्घकालतक उपासना करनेके बाद मनुष्य भक्त-संसर्गकी हेतुस्वरूपा कृष्णभक्तिको पाता है। शिवजी! उस निष्पक्व भक्तिको पाकर भारतवर्षमें बारंबार भ्रमण करते हुए जब भक्तोंकी सेवा करनेसे उसकी भक्ति परिपक्व हो जाती है, तब भक्तोंकी कृपासे तथा देवताओंके आशीर्वादसे उसे श्रीकृष्णमन्त्र प्राप्त होता है, जो परमोत्कृष्ट निर्वाणरूप फल प्रदान करनेवाला है। कृष्णव्रत और कृष्णमन्त्र सम्पूर्ण कामनाओंके फलके प्रदाता हैं। चिरकालतक श्रीकृष्णकी सेवा करनेसे भक्त श्रीकृष्ण-तुल्य हो जाता है। महाप्रलयके अवसरपर समस्त प्राणियोंका विनाश हो जाता है—यह सर्वथा निश्चित है; परंतु जो कृष्णभक्त हैं, वे अविनाशी हैं। उन साधुओंका नाश नहीं होता। शिवजी! श्रीकृष्णभक्त अत्यन्त निश्चिन्त होकर अविनाशी गोलोकमें आनन्द मनाते हैं। महेश्वर! आप सबका संहार करनेवाले हैं, परंतु कृष्णभक्तोंपर आपका वश नहीं चलता। उसी प्रकार माया सबको मोहग्रस्त कर लेती है, परंतु मेरी कृपासे वह भक्तोंको नहीं मोह पाती। नारायणी माया समस्त प्राणियोंकी माता है। वह कृष्णभक्तिका दान करनेवाली है, वह नारायणी माया मूलप्रकृति, अधीश्वरी, कृष्णप्रिया, कृष्णभक्ता, कृष्णतुल्या, अविनाशिनी, तेज:स्वरूपा और स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाली है। (दैत्योंद्वारा) सुरनिग्रहके अवसरपर वह देवताओंके तेजसे प्रकट हुई थी। उसने दैत्यसमूहोंका संहार करके दक्षके अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप भारतवर्षमें दक्षपत्नीके

गर्भसे जन्म लिया। फिर वह सतीदेवी, जो सनातनी कृष्णशक्ति हैं पिताके यज्ञमें आपकी निन्दा होनेके कारण शरीरका त्याग करके गोलोकको चली गयीं। शंकर! तब पूर्वकालमें आप उनके रूप तथा गुणके आश्रयभूत परम सुन्दर शरीरको लेकर भारतवर्षमें भ्रमण करते हुए दुःखी हो गये थे। उस समय श्रीशैलपर नदीके किनारे मैंने आपको समझाया था। फिर उसी देवीने शीघ्र ही शैलराजकी पत्नीके गर्भसे जन्म लिया।

शंकर! उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली साध्वी शिवा पुण्यक नामक उत्तम व्रतका अनुष्ठान करें। इस व्रतके पालनसे सहस्रों राजसूय-यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है। त्रिलोचन! इस व्रतमें सहस्रों राजसूय-यज्ञोंके समान धनका व्यय होता है, अतः यह व्रत सभी साध्वी महिलाओंद्वारा साध्य नहीं है। इस पुण्यक-व्रतके प्रभावसे स्वयं गोलोकनाथ श्रीकृष्ण पार्वतीके गर्भसे उत्पन्न होकर आपके पुत्र होंगे। वे कृपानिधि स्वयं समस्त देवगणोंके ईश्वर हैं, इसलिये त्रिलोकीमें 'गणेश' नामसे विख्यात होंगे। जिनके स्मरणमात्रसे निश्चय ही जगत्के विघ्नोंका नाश हो जाता है, इस कारण उन विभुका नाम 'विघ्ननिघ्न' हो गया। चूँकि पुण्यक-व्रतमें उन्हें नानाप्रकारके द्रव्य समर्पित किये जाते हैं, जिन्हें खाकर उनका उदर लंबा हो जाता है; अतः वे 'लम्बोदर' कहलायेंगे। शनिकी दृष्टि पड़नेसे सिरके कट जानेपर पुनः हाथीका सिर जोड़ा जायगा, इस कारण उन्हें 'गजानन' कहा जायगा। परशुरामजीके फरसेसे जब इनका एक दाँत टूट जायगा, तब ये अवश्य ही 'एकदन्त' नामवाले होंगे। वे ऐश्वर्यशाली शिशु सम्पूर्ण देवगणोंके, हमलोगोंके तथा जगत्के पूज्य होंगे। मेरे वरदानसे उनकी सबसे पहले पूजा होगी। सम्पूर्ण देवोंकी पूजाके समय सबसे पहले उनकी पूजा करके मनुष्य निर्विघ्नतापूर्वक पूजाके फलको पा लेता है, अन्यथा उसकी पूजा व्यर्थ हो जाती है।

मनुष्योंको चाहिये कि गणेश, सूर्य, विष्णु, शम्भु, अग्नि और दुर्गा—इन सबकी पहले पूजा करके तब अन्य देवताका पूजन करे। गणेशका पूजन करनेपर जगत्के विघ्न निर्मूल हो जाते हैं। सूर्यकी पूजासे नीरोगता आती है। श्रीविष्णुके पूजनसे पवित्रता, मोक्ष, पापनाश, यश और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है। शंकरका पूजन तत्त्वज्ञानके विषयमें परम तृप्तिका बीज है। अग्निका पूजन अपनी बुद्धिकी शुद्धिका उत्पादक कहा गया है। ब्रह्माद्वारा संस्कृत अग्निकी पूजासे मनुष्य अन्तसमयमें ज्ञान-मृत्युको प्राप्त करता है तथा शंकराग्निके सेवनसे दाता और भोक्ता होता है। दुर्गाकी अर्चना हरिभक्ति प्रदान करनेवाली तथा परम मङ्गलदायिनी होती है। इनकी पूजाके बिना अन्यकी पूजा करनेसे वह पूजन विपरीत हो जाता है। महादेव! त्रिलोकीके लिये यही क्रम प्रत्येक कल्पमें निश्चित है। ये देव निरन्तर विद्यमान रहनेवाले, नित्य तथा सृष्टिपरायण हैं। इनका आविर्भाव और तिरोभाव ईश्वरकी इच्छापर ही निर्भर है। उस सभाके बीच यों कहकर श्रीहरि मौन हो गये। उस समय देवता, ब्राह्मण तथा पार्वतीसहित शंकर परम प्रसन्न हुए।

(अध्याय ६)

पार्वतीद्वारा व्रतारम्भ, व्रत-समाप्तिमें पुरोहितद्वारा शिवको दक्षिणारूपमें माँगे जानेपर पार्वतीका मूर्च्छित होना, शिवजी तथा देवताओं और मुनियोंका उन्हें समझाना, पार्वतीका विषाद, नारायणका आगमन और उनके द्वारा पतिके बदले गोमूल्य देकर पार्वतीको व्रत समाप्त करनेका आदेश, पुरोहितद्वारा उसका अस्वीकार, एक अद्भुत तेजका आविर्भाव और देवताओं, मुनियों तथा पार्वतीद्वारा उसका स्तवन

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर हर्षसे गद्गद हुए मनवाले शिवजीने श्रीहरिकी आज्ञा स्वीकार करके श्रीहरिके साथ किये गये माङ्गलिक वार्तालापको प्रेमपूर्वक पार्वतीसे कह सुनाया। तब पार्वतीका मन प्रसन्न हो गया। फिर तो उन्होंने शिवजीकी आज्ञा मानकर उस मङ्गलव्रतके अवसरपर माङ्गलिक बाजा बजाया। फिर सुन्दर दाँतोंवाली पार्वतीने भलीभाँति स्नान करके शरीरको शुद्ध किया और स्वच्छ साड़ी तथा चद्दर धारण किया। तत्पश्चात् जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे विभूषित, फल और अक्षतसे सुशोभित तथा आमके पल्लवसे संयुक्त था, ऐसे रत्नकलशको चावलकी राशिपर स्थापित किया। फिर रत्नोंके उद्भवस्थान हिमालयकी कन्या सती पार्वतीने, जो रत्नोंसे विभूषित तथा रत्नजटित आसनपर विराजमान थी, रत्नसिंहासनोंपर समासीन मुनिश्रेष्ठोंकी पूजा करके चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और रत्नाभरणोंसे भूषित तथा रत्नसिंहासनपर विराजमान पुरोहितकी समर्चना की। इसके बाद विधि-विधानके अनुसार रत्नभूषित दिक्पालों, देवताओं, मनुष्यों और नागोंको आगे स्थापित करके भक्तिपूर्वक उनका भलीभाँति पूजन किया। फिर पुण्यक-व्रतमें, जिनकी अग्निमें तपाकर शुद्ध किये गये बहुमूल्य रत्नोंके भूषणों, उत्तम-उत्तम वस्त्रों तथा पूजनोपयोगी नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे पूजा की गयी थी और जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे सुशोभित थे, उन ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी परम भक्तिपूर्वक समर्चना की।

मुने! तत्पश्चात् पार्वतीदेवीने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रत आरम्भ किया। तदनन्तर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सतीने उस मङ्गल-कलशपर अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णका आवाहन करके उन्हें भक्तिपूर्वक क्रमशः षोडशोपचार समर्पित किया। फिर व्रतमें जिन अनेक प्रकारके द्रव्योंके देनेका विधान है, एक-एक करके उन सभी फलदायी पदार्थोंको प्रदान किया। पुनः व्रतके लिये कहा गया उपहार, जो त्रिलोकीमें दुर्लभ है, वह सब भी भक्तिसहित अर्पण किया। इस प्रकार उस सतीने वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक सभी पदार्थोंको अर्पित करके तिल और घीसे तीन लाख आहुतियोंका हवन कराया और ब्राह्मणों, देवताओं तथा पूजित अतिथियोंको भोजनसे तृप्त किया। इस प्रकार उत्तम व्रतवाली सतीने उस पालनीय पुण्यक-व्रतमें सारे कर्तव्यको वर्षपर्यन्त प्रतिदिन विधानके साथ पूर्ण किया। समाप्तिके दिन विप्रवर पुरोहितने उनसे कहा—'सुव्रते! इस उत्तम व्रतमें तुम मुझे अपने पतिको दक्षिणारूपमें दे दो।' पुरोहितके इस कथनको सुनकर महामाया पार्वती उस देव-सभाके मध्य विलाप करके मूर्च्छित हो गयी; क्योंकि उस समय मायाने उनके चित्तको मोह लिया था।

नारद! उन्हें मूर्च्छित देखकर उन मुनिवरोंको तथा ब्रह्मा और विष्णुको हँसी आ गयी। तब उन्होंने शंकरजीको पार्वतीके पास भेजा। उस समय पार्वतीको होशमें लानेके लिये सभासदोंद्वारा प्रेरित किये जानेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ शिवजी कहने लगे।

श्रीमहादेवजीने कहा—भद्रे! उठो, निस्संदेह तुम्हारा कल्याण होगा। तुम होशमें आकर मेरी बात सुनो। फिर जिनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे, उन पार्वतीसे यों कहकर शिवजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया और चेतनायुक्त कर दिया। तत्पश्चात् हितकर, सत्य, परिमित, परिणाममें सुखप्रद, यशस्कर और फलदायक वचन कहना आरम्भ किया। देवि! जिसका वेदने निरूपण किया है, जो सर्वसम्मत और इष्ट है, उस धर्मार्थका इस धर्मसभामें मैं वर्णन करता हूँ, सुनो। देवि! दक्षिणा समस्त कर्मोंकी सारभूता है। धर्मिष्ठे! वह धर्म-कर्ममें नित्य ही यश और फल प्रदान करनेवाली है। प्रिये! देवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नैमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणासे रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता है और उस कर्मसे निश्चय ही दाता कालसूत्र नामक नरकमें जाता है। तत्पश्चात् वह शत्रुओंसे पीड़ित होकर दीनताको प्राप्त होता है। ब्राह्मणके उद्देश्यसे संकल्प की हुई दक्षिणा यदि उसी समय नहीं दे दी जाती है तो वह बढ़ते-बढ़ते अनेक गुनी हो जाती है।

श्रीविष्णुने कहा—धर्मिष्ठे! धर्मकर्मके विषयमें तुम अपने धर्मकी रक्षा करो; क्योंकि धर्मज्ञे! अपने धर्मका पूर्णतया पालन करनेपर सबकी रक्षा हो जाती है।

ब्रह्माने कहा—धर्मज्ञे! जो किसी कारणवश धर्मकी रक्षा नहीं करता है तो धर्मके नष्ट हो जानेपर उसके कर्त्ताका विनाश हो जाता है।

धर्मने कहा—साध्वि! पतिको दक्षिणारूपमें देकर यत्नपूर्वक मेरी रक्षा करो। महासाध्वि! मेरे सुरक्षित रहनेपर सब कुछ कल्याण ही होगा।

देवताओंने कहा—महासाध्वि! तुम धर्मकी रक्षा करके अपने व्रतको पूर्ण करो। सती! तुम्हारे व्रतके पूरा हो जानेपर हमलोग तुम्हारे मनोरथको पूर्ण कर देंगे।

मुनियोंने कहा—पतिव्रते! हवनको पूरा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा प्रदान करो। धर्मज्ञे! हमलोगोंके उपस्थित रहते अमङ्गल कैसे होगा?

सनत्कुमारने कहा—शिवे! या तो तुम मुझे शिवको दक्षिणारूपमें दे दो, अन्यथा इस व्रतके फलको तथा चिरकालसे संचित अपनी तपस्याके फलको भी छोड़ दो। साध्वि! इस प्रकार कर्मके दक्षिणारहित हो जानेपर मैं इस व्रतके फलको तथा यजमानके सारे कर्मोंके फलको पा जाऊँगा।

तब पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वरो! जिस कर्ममें पतिकी ही दक्षिणा दी जाती है, उस कर्मसे मुझे क्या लाभ? मुने! दक्षिणा देनेसे तथा धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे भी मेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा? भला, यदि भूमिकी पूजा न की जाय तो वृक्षके पूजनसे क्या फल मिलेगा? क्योंकि कारणके नष्ट हो जानेपर कार्यकी स्थिति कहाँ और फिर अन्न तथा फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं? यदि स्वेच्छानुसार प्राणोंका ही त्याग कर दिया जाय तो फिर शरीरसे क्या प्रयोजन है? जिसकी दृष्टिशक्ति ही नष्ट हो गयी है, उस आँखसे क्या लाभ? सुरेश्वरो! पतिव्रताओंके लिये पति सौ पुत्रोंके समान होता है। ऐसी दशामें यदि व्रतमें पतिको ही दे देना है तो उस व्रतसे अथवा (व्रतके फलस्वरूप) पुत्रसे क्या सिद्ध होगा? माना कि पुत्र पतिका वंश होता है, किंतु उसका एकमात्र मूल तो पति ही है। भला, जहाँ मूलधन ही नष्ट हो जाय वहाँ उसका सारा व्यापार तो निष्फल हो ही जायगा।

इस प्रकार वाद-विवाद चल ही रहा था, इसी बीच उस सभामें स्थित देवताओं और मुनियोंने आकाशमें बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए एक रथको देखा, जो पार्षदोंद्वारा घिरा हुआ था। वे सभी पार्षद श्याम रंगवाले तथा चार भुजाधारी थे। उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी और वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। तत्पश्चात्

वैकुण्ठवासी भगवान् उस विमानसे उतरकर हर्षपूर्वक उस सभामें आये। फिर तो सुरेश्वरोंने उनकी स्तुति करना आरम्भ किया। तदनन्तर जिनके चार भुजाएँ थीं; जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे; जो लक्ष्मी और सरस्वतीके स्वामी, शान्तस्वरूप, परम मनोहर और सुखपूर्वक दर्शन करने योग्य थे, परंतु भक्तिहीनोंके लिये जिनका दर्शन करोड़ों जन्मोंमें भी नहीं हो सकता; जिनके नील रंगकी आभा करोड़ों कामदेवोंको मात कर रही थी; जिनका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंके समान था; जो अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित सुन्दर भूषणोंसे विभूषित थे, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सेवनीय हैं, भक्तगण सदा जिनका स्तवन करते हैं; जो अपने प्रकाशसे आच्छादित देवर्षियोंद्वारा घिरे हुए थे—उन परमेश्वरको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने एक श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर बैठाया और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। उस समय उन सबकी अञ्जलियाँ बँधी हुई थीं, शरीर रोमाञ्चित थे और आँखोंमें आँसू छलक आये थे। तब परम बुद्धिमान् भगवान्ने मुस्कराते हुए मधुर वाणीद्वारा उनसे सारा वृत्तान्त पूछा और उनके द्वारा सब जान लेनेपर कहना आरम्भ किया।

श्रीनारायण बोले—सुरगणो! मेरे सिवा ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त यह सारा जगत् प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है—यह सर्वथा सत्य है। विश्वमें सारे प्राणी जिस शक्तिसे शक्तिमान् हुए हैं, उस शक्तिको मैंने ही प्रकाशित किया है। सृष्टिके आदिमें मेरी इच्छासे वह प्रकृतिदेवी मुझसे ही प्रकट हुई हैं और मेरे सृष्टिका संहार कर लेनेपर वह अन्तर्हित होकर शयन करती हैं। प्रकृति ही सृष्टिकी विधायिका और समस्त प्राणियोंकी परा जननी है। वह मेरी माया मेरे समान है, इसी कारण नारायणी कहलाती है। शम्भुने चिरकालतक मेरा ध्यान करते हुए तपस्या की है, इसलिये तपकी फलस्वरूपा मायाको मैंने उन्हें प्रदान किया है। मायारूपा पार्वतीका यह व्रत लोकशिक्षाके लिये ही है, अपने लिये नहीं है; क्योंकि त्रिलोकीमें व्रतों और तपस्याओंका फल देनेवाली तो ये स्वयं ही हैं। इनकी मायासे सभी प्राणी मोहित हैं। फिर प्रत्येक कल्पमें पुन-पुनः इनके स्तवन, व्रत और व्रत-फलकी साधनासे क्या लाभ? देवताओंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं, वे मेरे ही अंश हैं तथा जीवधारी प्राणी और देवता आदि मेरी ही कलाएँ तथा कलांशरूप हैं। जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घटका निर्माण नहीं कर सकता तथा सोनार स्वर्णके बिना कुण्डल बनानेमें असमर्थ है, उसी तरह मैं भी शक्तिके बिना अपनी सृष्टिकी रचना करनेमें असमर्थ हूँ। अतः सृष्टिके सृजनमें शक्तिकी ही प्रधानता है—यह सभी दर्शनशास्त्रोंको मान्य है। मैं समस्त देहधारियोंका आत्मा, निर्लेप, अदृश्य और साक्षी हूँ। प्रकृतिसे उत्पन्न सभी पाञ्चभौतिक शरीर नश्वर हैं, परंतु सूर्यके समान प्रकाशमान शरीरवाला मैं नित्य हूँ। जगत्‌में प्रकृति सबकी आधारस्वरूपा है और मैं सबका आत्मा हूँ। वेदमें ऐसा निरूपण किया गया है कि मैं आत्मा हूँ, ब्रह्मा मन हैं, महेश्वर ज्ञानरूप हैं, स्वयं विष्णु पञ्चप्राण हैं, ऐश्वर्यशालिनी प्रकृति बुद्धि है, मेधा, निद्रा आदि ये सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं और वह प्रकृति ही ये शैलराजकन्या पार्वती हैं। मैं सनातनदेव ही वैकुण्ठका अधिपति हूँ और मैं ही गोलोकका भी स्वामी हूँ। वहाँ गोलोकमें मैं दो भुजाधारी होकर गोप और गोपियोंसे घिरा रहता हूँ तथा यहाँ वैकुण्ठमें मैं देवेश्वर और लक्ष्मीपतिके रूपमें चार भुजाएँ धारण करता हूँ और मेरे पार्षद मुझे घेरे रहते हैं। वैकुण्ठसे ऊपर पचास करोड़ योजनकी दूरीपर स्थित गोलोकमें मेरा निवास-स्थान है, वहाँ मैं 'गोपीनाथ' रूपसे रहता हूँ। उन्हीं द्विभुजधारी गोपीनाथकी व्रतद्वारा आराधना की

जाती है और वे ही उसका फल प्रदान करते हैं। जो जिस रूपसे उनका ध्यान करता है, उसे उसी रूपसे उसका फल देते हैं। अतः शिवे! तुम शिवको दक्षिणारूपमें देकर अपना व्रत पूर्ण करो। फिर समुचित मूल्य देकर अपने स्वामीको वापस कर लेना। शुभे! जैसे गौएँ विष्णुकी देहस्वरूपा हैं, उसी प्रकार शिव भी विष्णुके शरीर हैं; अतः तुम ब्राह्मणको गोमूल्य प्रदान करके अपने स्वामीको लौटा लेना। यह बात श्रुतिसम्मत है; क्योंकि जैसे स्वामी यज्ञपत्नीका दान करनेके लिये सदैव समर्थ है, उसी तरह यज्ञपत्नी भी स्वामीको दे डालनेकी अधिकारिणी है।

सभाके बीच यों कहकर नारायण वहीं अन्तर्धान हो गये। इसे सुनकर सभी सभासद् हर्षविभोर हो गये तथा हर्ष-गद्गद हुई पार्वती दक्षिणा देनेको उद्यत हुईं। तदनन्तर शिवाने हवनकी पूर्णाहुति करके शिवको दक्षिणारूपमें दे दिया और उधर सनत्कुमारजीने उस देवसभामें 'स्वस्ति' ऐसा कहकर दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयभीत होनेके कारण दुर्गाका कण्ठ, ओठ और तालु सूख गया था, वे हाथ जोड़कर दुःखी हृदयसे ब्राह्मणसे बोलीं।

पार्वतीजीने कहा—विप्रवर! 'गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर है'—ऐसा वेदमें कहा गया है, अतः मैं आपको एक लाख गौएँ प्रदान करूँगी। आप मेरे स्वामीको लौटा दीजिये। पतिके मिल जानेपर मैं ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणाएँ बाँटूँगी। (अभी तो मैं आत्महीन हूँ, ऐसी दशामें) भला, आत्मासे रहित शरीर कौन-सा कर्म करनेमें समर्थ हो सकता है?

सनत्कुमारजी बोले—देवि! मैं ब्राह्मण हूँ। मुझे एक लाख गौओंसे क्या प्रयोजन है और इस अमूल्य रत्नको गौओंके बदले देनेसे भी क्या लाभ होगा? त्रिलोकीमें सभी लोग स्वयं अपने-अपने कर्मके कर्ता हैं। क्या कर्ताका अभीष्ट कर्म कहीं दूसरेकी इच्छासे होता है? मैं इन दिगम्बरको आगे करके तीनों लोकोंमें भ्रमण करूँगा। उस समय ये बालक-बालिकाओंके समुदायके लिये हँसीके कारण होंगे।

मुने! उस देवसभामें यों कहकर ब्रह्माके पुत्र तेजस्वी सनत्कुमारने शंकरजीको अपने संनिकट बैठा लिया। इस प्रकार कुमारद्वारा शंकरजीको ग्रहण किये जाते देखकर पार्वतीके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये। वे शरीर छोड़ देनेके लिये उद्यत हो गयीं। उस समय वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि यह कैसी कठिन बात हुई कि न तो अभीष्टदेवका दर्शन मिला और न व्रतका फल ही प्राप्त हुआ। इसी बीच पार्वतीसहित देवताओंने आकाशमें एक परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उसकी प्रभा करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे उत्कृष्ट थी, वह दसों दिशाओंको प्रज्वलित कर रहा था और सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त कैलास पर्वतको तथा सबको आच्छादित कर रहा था। उसकी मण्डलाकृति बड़ी विस्तृत थी। भगवान्‌के उस तेजको देखकर देवता लोग क्रमशः उनकी स्तुति करने लगे।

विष्णुने कहा—भगवन्! यह जो महाविराट् है, जिसके रोमछिद्रोंमें सभी ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं, वह जब आपका सोलहवाँ अंश है, तब हम लोगोंकी क्या गणना है?

ब्रह्माने कहा—परमेश्वर! जो वेदोंके उपयुक्त दृश्य है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन करने, स्तवन करने तथा वर्णन करनेमें मैं समर्थ हूँ; परंतु जो वेदोंसे परे है, उसकी मैं क्या स्तुति करूँ?

श्रीमहादेवजीने कहा—भगवन्! जो सबके लिये अनिर्वचनीय, स्वेच्छामय, व्यापक और ज्ञानसे परे हैं, उन आपका मैं ज्ञानका अधिष्ठातृदेवता होकर किस प्रकार स्तवन करूँ?

धर्मने कहा—जो अदृश्य होते हुए भी अवतारके समय सभी प्राणियोंके लिये दृश्य हो

जाते हैं, उन भक्तोंके मूर्तिमान् अनुग्रहस्वरूप तेजोरूपकी मैं कैसे स्तुति करूँ?

देवताओंने कहा—देवेश्वर! भला जिनका गुणगान करनेमें वेद समर्थ नहीं हैं तथा सरस्वतीकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है, उन आपका स्तवन करनेके लिये हम लोग कैसे समर्थ हो सकते हैं; क्योंकि हम तो आपके कलांश हैं।

मुनियोंने कहा—देव! वेदोंको पढ़कर विद्वान् कहलानेवाले हम लोग वेदोंके कारण-स्वरूप आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? आप मन-वाणीके परे हैं; आपका स्तवन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं।

सरस्वतीने कहा—अहो! यद्यपि वेदवादी लोग मुझे वाणीकी अधिष्ठातृदेवी कहते हैं, तथापि आपकी स्तुति करनेके लिये मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं है; क्योंकि आप वाणी और मनके अगोचर हैं।

सावित्रीने कहा—नाथ! प्राचीनकालमें मेरी उत्पत्ति आपकी कलासे हुई थी। मैं वेदोंकी जननी हूँ। अत: स्त्रीस्वभाववश मैं सम्पूर्ण कारणोंके भी कारणस्वरूप आपकी किस प्रकार स्तुति करूँ?

लक्ष्मीने कहा—भगवन्! मैं आपके अंशभूत विष्णुकी पत्नी हूँ, जगत्‌का पालन-पोषण करनेवाली हूँ और आपकी कलासे उत्पन्न हुई हूँ। ऐसी दशामें जगत्‌की उत्पत्तिके कारणस्वरूप आपका स्तवन कैसे कर सकती हूँ?

हिमालयने कहा—नाथ! मैं कर्मसे स्थावर हूँ, अत: मुझे स्तुति करनेके लिये उद्यत देखकर सत्पुरुष मेरा उपहास कर रहे हैं। मैं क्षुद्र हूँ और स्तवन करनेके लिये सर्वथा अयोग्य हूँ; फिर किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ?

मुने! इस प्रकार जब सभी देवता, देवियाँ और मुनिगण क्रमशः उन नारायणकी स्तुति करके चुप हो गये, तब जो उत्तमव्रतपरायणा, तपस्याओं और सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली और जगन्माता हैं, वे पार्वतीदेवी शिवजीकी प्रेरणासे व्रतके आराध्यदेव परमात्माकी स्तुति करनेको उद्यत हुईं। उस व्रतकालमें उन सतीका शरीर धौतवस्त्रसे आच्छादित था। वे सिरपर जटाका भार धारण किये हुए थीं। उनका रूप धधकती हुई अग्निकी लपटके समान प्रकाशमान था और वे तेजकी मूर्तिमान् विग्रह जान पड़ती थीं।

पार्वतीजी बोलीं—श्रीकृष्ण! आप तो मुझे जानते हैं; परंतु मैं आपको जाननेमें असमर्थ हूँ। भद्र! आपको वेदज्ञ, वेद अथवा वेदकर्ता—इनमेंसे कौन जानते हैं? अर्थात् कोई नहीं। भला, जब आपके अंश आपको नहीं जानते, तब आपकी कलाएँ आपको कैसे जान सकती हैं? इस तत्त्वको आप ही जानते हैं। आपके अतिरिक्त दूसरे लोग कौन इसे जाननेमें समर्थ हैं? आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतम, अव्यक्त, स्थूलसे भी महान् स्थूलतम हैं। आप सनातन, विश्वके कारण, विश्वरूप और विश्व हैं। आप ही कार्य, कारण, कारणोंके भी कारण, तेज:स्वरूप, षडैश्वर्योंसे युक्त, निराकार, निराश्रय, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, स्वात्माराम, परात्पर, प्रकृतिके अधीश्वर और विराट्‌के बीज हैं। आप ही विराट्‌रूप भी हैं। आप सगुण हैं और सृष्टि-रचनाके लिये अपनी कलासे प्राकृतिक रूप धारण कर लेते हैं। आप ही प्रकृति हैं, आप ही पुरुष हैं और आप ही वेदस्वरूप हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कहीं कुछ भी नहीं है। आप जीव, साक्षीके भोक्ता और अपने आत्माके प्रतिबिम्ब हैं। आप ही कर्म और कर्मबीज हैं तथा कर्मोंके फलदाता भी आप ही हैं। योगीलोग आपके निराकार तेजका ध्यान करते हैं तथा कोई-कोई आपके चतुर्भुज, शान्त, लक्ष्मीकान्त मनोहर रूपमें ध्यान लगाते हैं। नाथ! जो वैष्णव भक्त हैं, वे आपके उस तेजस्वी, साकार, कमनीय, मनोहर, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी,

पीताम्बरसे सुशोभित, रूपका ध्यान करते हैं और आपके भक्तगण परमोत्कृष्ट, कमनीय, दो भुजावाले, सुन्दर, किशोर-अवस्थावाले, श्यामसुन्दर, शान्त, गोपीनाथ तथा रत्नाभरणोंसे विभूषित रूपका निरन्तर हर्षपूर्वक सेवन करते हैं। योगीलोग भी जिस रूपका ध्यान करते हैं, वह भी उस तेजस्वी रूपके अतिरिक्त और क्या है? देव! प्राचीनकालमें जब असुरोंका वध करनेके लिये ब्रह्माजीने मेरा स्तवन किया, तब मैं आपके उस तेजको धारण करनेवाले देवताओंके तेजसे प्रकट हुई। विभो! मैं अविनाशिनी तथा तेज:स्वरूपा हूँ। उस समय मैं शरीर धारण करके रमणीय रमणीरूप बनाकर वहाँ उपस्थित हुई। तत्पश्चात् आपकी मायास्वरूपा मैंने उन असुरोंको मायाद्वारा मोहित कर लिया और फिर उन सबको मारकर मैं शैलराज हिमालयपर चली गयी। तदनन्तर तारकाक्षद्वारा पीड़ित हुए देवताओंने जब मेरी सम्यक् प्रकारसे स्तुति की, तब मैं उस जन्ममें दक्ष-पत्नीके गर्भसे उत्पन्न होकर शिवजीकी भार्या हुई और दक्षके यज्ञमें शिवजीकी निन्दा होनेके कारण मैंने उस शरीरका परित्याग कर दिया। फिर मैंने ही शैलराजके कर्मोंके परिणामस्वरूप हिमालयकी पत्नीके गर्भसे जन्म धारण किया। इस जन्ममें भी अनेक प्रकारकी तपस्याके फलस्वरूप शिवजी मुझे प्राप्त हुए और ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे उन सर्वव्यापी योगीने मेरा पाणिग्रहण किया; परंतु देवमायावश मुझे उनके शृङ्गारजन्य तेजकी प्राप्ति नहीं हुई। परमेश्वर! इसी कारण पुत्र-दु:खसे दु:खी होकर मैं आपका स्तवन कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ; परंतु अङ्गोंसहित वेदमें आपने ऐसा विधान बना रखा है कि इस व्रतमें अपने स्वामीकी दक्षिणा दी जाती है (जो बड़ा दुष्कर कार्य है)। कृपासिन्धो! यह सब सुनकर आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये।

नारद! वहाँ ऐसा कहकर पार्वती चुप हो गयीं। जो मनुष्य मनको पूर्णतया एकाग्र करके भारतवर्षमें इस पार्वतीकृत स्तोत्रको सुनता है, उसे निश्चय ही विष्णुके समान पराक्रमी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। जो वर्षभरतक हविष्यान्नका भोजन करके भक्तिभावसे श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह इस उत्तम पुण्यक-व्रतके फलको पाता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। ब्रह्मन्! यह विष्णुका स्तवन सम्पूर्ण सम्पत्तियोंकी वृद्धि करनेवाला, सुखदायक, मोक्षप्रद, साररूप, स्वामीके सौभाग्यका वर्धक, सम्पूर्ण सौन्दर्यका बीज, यशकी राशिको बढ़ानेवाला, हरि-भक्तिका दाता और तत्त्वज्ञान तथा बुद्धिकी विशेषरूपसे उन्नति करनेवाला है।*

(अध्याय ७)

---

* पार्वत्युवाच—

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी। के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारका:॥
त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति त्वत्कला:। त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वरा:॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽव्यक्त: स्थूलात् स्थूलतमो महान्। विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातन:॥
कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम्। तेज:स्वरूपो भगवान् निराकारो निराश्रय:॥
निर्लिप्तो निर्गुण: साक्षी स्वात्माराम: परात्पर:। प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च॥
सगुणस्त्वं प्राकृतिक: कलया सृष्टिहेतवे॥
प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च वेदान्यो न क्वचिद् भवेत्। जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मन: प्रतिबिम्बका:॥
कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायक:। ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरिणम्॥
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्॥

पार्वतीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए श्रीकृष्णका पार्वतीको अपने रूपके दर्शन कराना, वर प्रदान करना और बालकरूपसे उनकी शय्यापर खेलना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! पार्वतीद्वारा किये गये उस स्तवनको सुनकर करुणानिधि श्रीकृष्णने पार्वतीको अपने उस स्वरूपके, जो सबके लिये अदृश्य और परम दुर्लभ है, दर्शन कराये। उस समय पार्वतीदेवी स्तुति करके अपने मनको एकमात्र श्रीकृष्णमें लगाकर ध्यानमें संलग्न थीं। उन्होंने उस तेजोराशिके मध्य सबको मोहित करनेवाले श्रीकृष्णके स्वरूपका दर्शन किया। वह एक रत्नपूर्ण मनोरम आसनपर, जो बहुमूल्य रत्नोंका बना हुआ था, जिसमें हीरे जड़े हुए थे और जो मणियोंकी मालाओंसे शोभित था, विराजमान था। उसके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था, हाथमें वंशी शोभा दे रही थी। गलेमें वनमालाकी निराली छटा थी। शरीरका रंग श्याम था। रत्नोंके आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसकी किशोर-अवस्था तथा वेश-भूषा विचित्र थी। उसके ललाटपर चन्दनकी खौर लगी थी। मुखपर मनोहर मुस्कान खेल रही थी। वह वन्दनीय स्वरूप शरद्‌ऋतुके चन्द्रमाका उपहासक तथा मालतीकी मालाओंसे युक्त था। उसके मस्तकपर मयूरपिच्छकी अनोखी छवि थी। गोपाङ्गनाएँ उसे घेरे हुए थीं। वह राधाके वक्षःस्थलको उद्भासित कर रहा था, उसकी लावण्यता करोड़ों कामदेवोंको मात कर रही थी, वही लीलाका धाम, मनोहर, अत्यन्त प्रसन्न, सबका प्रेमपात्र और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाला था। ऐसे उस रूपको देखकर सुन्दरी पार्वतीने मन-ही-मन उसीके अनुरूप पुत्रकी कामना की और उसी क्षण उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इस प्रकार वरदानी परमात्माने पार्वतीके मनमें जिस-जिस वस्तुकी कामना थी, उसे पूर्ण करके देवताओंका भी अभीष्ट सिद्ध किया। तत्पश्चात् यह तेज अन्तर्धान हो गया। तब देवताओंने कृपापरवश हो सनत्कुमारको समझाया और

वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम्॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम्। शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम्॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते सततं मुदा। ध्यायन्ति योगिनो यत् तत् कुतस्तेजस्विनं विना॥
तत् तेजो बिभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा। आविर्भूतासुराणां च वधाय ब्रह्मणः स्तुता॥
नित्या तेजःस्वरूपाहं विधृत्य विग्रहं विभो। स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता॥
मायया तव मायाहं मोहयित्वासुरान् पुरा। निहत्य सर्वान् शैलेन्द्रमगमं तं हिमाचलम्॥
ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः। अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री तत्र जन्मनि॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाहं शिवनिन्दया। अभवं शैलजायायां शैलाधीशस्य कर्मणा।
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि। पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं देवमायया। स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम्। देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा॥
श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मां कर्तुमर्हसि। इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद॥
भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः। सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम्॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः। सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः॥
विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्धनम्। सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम्॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम्। हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविवर्धनम्॥

(गणपतिखण्ड ७।१०९—१३१)

उन्होंने उन उमारहित दिगम्बर शिवको प्रसन्नचित्तवाली पार्वतीको लौटा दिया। फिर तो विश्वको आनन्दित करनेवाली दुर्गाने ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके रत्न तथा भिक्षुओं और वन्दियोंको सुवर्ण दान किये। ब्राह्मणों, देवताओं तथा पर्वतोंको भोजन कराया। सर्वोत्तम उपहारोंद्वारा शंकरजीकी पूजा की, बाजा बजवाया, माङ्गलिक कार्य कराये और श्रीहरिसे सम्बन्ध रखनेवाले सुन्दर गीत गवाये। इस प्रकार दुर्गाने व्रतको समाप्त करके परम उल्लासके साथ दान देकर सबको भोजन कराया। तत्पश्चात् अपने स्वामी शिवजीके साथ स्वयं भी भोजन किया। इसके बाद उत्तम पानके सुन्दर बीड़े, जो कपूर आदिसे सुवासित थे, क्रमशः सबको देकर कौतुकवश शिवजीके साथ स्वयं भी खाया। तदनन्तर पार्वतीदेवी एकान्तमें भगवान् शंकरके साथ विहार करने लगीं। इसी बीचमें एक ब्राह्मण दरवाजेपर आया। मुने! उस भिक्षुक ब्राह्मणका रूप तैलाभावके कारण रूखा था, शरीर मैले वस्त्रसे आच्छादित था, उसके दाँत अत्यन्त स्वच्छ थे, वह तृष्णासे पूर्णतया पीड़ित था, उसका शरीर कृश था, वह उज्ज्वल वर्णका तिलक धारण किये हुए था, उसका स्वर बहुत दीन था और दीनताके कारण उसकी मूर्ति कुत्सित थी। इस प्रकारके उस अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल ब्राह्मणने अन्नकी याचना करनेके लिये दरवाजेपर डंडेके सहारे खड़े होकर महादेवजीको पुकारा।

ब्राह्मणने कहा—महादेव! आप क्या कर रहे हैं? मैं सात राततक चलनेवाले व्रतके समाप्त होनेपर भूखसे व्याकुल होकर भोजनकी इच्छासे आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। हे तात! आप तो करुणाके सागर हैं, अतः मुझ जराग्रस्त तथा तृष्णासे अत्यन्त पीड़ित वृद्धकी ओर दृष्टि डालिये। अरे ओ महादेव! आप क्या कर रहे हैं ? माता पार्वती! उठो और मुझे सुवासित जल तथा अन्न प्रदान करो। गिरिराजकुमारी! मुझ शरणागतकी रक्षा करो। माता! ओ माता! तुम तो जगत्‌की माता हो, फिर मैं जगत्‌से बाहर थोड़े ही हूँ; अतः शीघ्र आओ। भला, अपनी माताके रहते हुए मैं किस कारण तृष्णासे पीड़ित हो रहा हूँ? ब्राह्मणकी दीन वाणी सुनकर शिव-पार्वती उठे। इसी समय शिवजीका शुक्रपात हो गया। वे पार्वतीके साथ द्वारपर आये। वहाँ उन्होंने उस वृद्ध तथा दीन ब्राह्मणको देखा जो वृद्ध-अवस्थासे अत्यन्त पीड़ित था। उसके शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। वह डंडा लिये हुए था और उसकी कमर झुक गयी थी। वह तपस्वी होते हुए भी अशान्त था। उसके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे और वह बड़ी शक्ति लगाकर उन दोनोंको प्रणाम तथा उनका स्तवन कर रहा था। उसके अमृतसे भी उत्तम वचन सुनकर नीलकण्ठ महादेवजी प्रसन्न हो गये। तब वे मुस्कराकर परम प्रेमके साथ उससे बोले।

शंकरजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! इस समय मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपका घर कहाँ है और आपका नाम क्या है? इसे शीघ्र बतलाइये।

पार्वतीजी बोलीं—विप्रवर! कहाँसे आपका आगमन हुआ है? मेरा परम सौभाग्य था जो आप यहाँ पधारे। आप ब्राह्मण अतिथि होकर मेरे घरपर आये हैं, अतः आज मेरा जन्म सफल हो गया। द्विजश्रेष्ठ! अतिथिके शरीरमें देवता, ब्राह्मण और गुरु निवास करते हैं; अतः जिसने अतिथिका आदर-सत्कार कर लिया, उसने मानो तीनों लोकोंकी पूजा कर ली। अतिथिके चरणोंमें सभी तीर्थ सदा वर्तमान रहते हैं, अतः अतिथिके चरण-प्रक्षालनके जलसे निश्चय ही गृहस्थको तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। जिसने अपनी शक्तिके अनुसार यथोचितरूपसे अतिथिकी पूजा कर ली, उसने मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया तथा सभी यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली। जिसने

भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक अतिथिका पूजन कर लिया, उसके द्वारा मानो भूतलपर सम्पूर्ण महादान कर लिये गये; क्योंकि वेदोंमें वर्णित जो नाना प्रकारके पुण्य हैं, वे तथा उनके अतिरिक्त अन्य पुण्यकर्म भी अतिथि-सेवाकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। इसलिये जिसके घरसे अतिथि अनादृत होकर लौट जाता है, उस गृहस्थके पितर, देवता, अग्नि और गुरुजन भी तिरस्कृत हो उस अतिथिके पीछे चले जाते हैं। जो अपने अभीष्ट अतिथिकी अर्चना नहीं करता, वह बड़े-बड़े पापोंको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणने कहा—वेदज्ञे! आप तो वेदोंके ज्ञानसे सम्पन्न हैं, अतः वेदोक्त विधिसे पूजन कीजिये। माता! मैं भूख-प्याससे पीड़ित हूँ। मैंने श्रुतियोंमें ऐसा वचन भी सुना है कि जब मनुष्य व्याधियुक्त, आहाररहित अथवा उपवास-व्रती होता है, तब वह स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है।

पार्वतीजीने पूछा—विप्रवर! आप क्या भोजन करना चाहते हैं? वह यदि त्रिलोकीमें परम दुर्लभ होगा तो भी आज मैं आपको खिलाऊँगी। आप मेरा जन्म सफल कीजिये।

ब्राह्मणने कहा—सुव्रते! मैंने सुना है कि उत्तम व्रतपरायणा आपने पुण्यक-व्रतमें सभी प्रकारका भोजन एकत्रित किया है, अतः उन्हीं अनेक प्रकारके मिष्टान्नोंको खानेके लिये मैं आया हूँ। मैं आपका पुत्र हूँ। जो मिष्टान्न तीनों लोकोंमें दुर्लभ हैं, उन पदार्थोंको मुझे देकर आप सबसे पहले मेरी पूजा करें। साध्वि! वेदवादियोंका कथन है कि पिता पाँच प्रकारके होते हैं। माताएँ अनेक तरहकी कही जाती हैं और पुत्रके पाँच भेद हैं। विद्यादाता (गुरु), अन्नदाता, भयसे रक्षा करनेवाला, जन्मदाता (पिता) और कन्यादाता (श्वशुर)—ये मनुष्योंके वेदोक्त पिता कहे गये हैं। गुरुपत्नी, गर्भधात्री (जननी), स्तनदात्री (धाय), पिताकी बहिन (बूआ), माताकी बहिन (मौसी), माताकी सपत्नी (सौतेली माता), अन्न प्रदान करनेवाली (पाचिका) और पुत्रवधू—ये माताएँ कहलाती हैं। भृत्य, शिष्य, दत्तक, वीर्यसे उत्पन्न (औरस) और शरणागत—ये पाँच प्रकारके पुत्र हैं। इनमें चार धर्मपुत्र कहलाते हैं और पाँचवाँ औरस पुत्र धनका भागी होता है*। माता! मैं आप पुत्रहीनाका ही अनाथ पुत्र हूँ, वृद्धावस्थासे ग्रस्त हूँ और इस समय भूख-प्याससे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आया हूँ। गिरिराजकिशोरी! अन्नोंमें श्रेष्ठ पूड़ी, उत्तम-उत्तम पके फल, आटेके बने हुए नानाप्रकारके पदार्थ, काल-देशानुसार उत्पन्न हुई वस्तुएँ, पक्वान्न, चावलके आटेका बना हुआ तिकोना पदार्थविशेष, दूध, गन्ना, गुड़के बने हुए द्रव्य, घी, दही, अगहनीका भात, घृतमें पका हुआ व्यञ्जन, गुड़मिश्रित तिलोंके लड्डू, मेरी जानकारीसे बाहर सुधा-तुल्य अन्य वस्तुएँ, कर्पूर आदिसे सुवासित सुन्दर श्रेष्ठ ताम्बूल, अत्यन्त निर्मल तथा स्वादिष्ट जल—इन सभी सुवासित पदार्थोंको, जिन्हें खाकर मेरी सुन्दर तोंद हो जाय, मुझे प्रदान कीजिये।

आपके स्वामी सारी सम्पत्तियोंके दाता तथा त्रिलोकीके सृष्टिकर्ता हैं और आप सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं; अतः आप मुझे रमणीय रत्नसिंहासन, अमूल्य रत्नोंके आभूषण, अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र, अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति,

* विद्यादातान्नदाता च भयत्राता च जन्मदः। कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुः स्वसा। स्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्यान्नदायिका॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः। धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति॥
(गणपतिखण्ड ८। ४७—४९)

मृत्युञ्जय नामक ज्ञान, सुखप्रदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिये। सतीमाता! आप ही सदा श्रीहरिकी प्रिया तथा सर्वस्व प्रदान करनेवाली शक्ति हैं; अत: अपने पुत्रके लिये आपको कौन-सी वस्तु अदेय है? मैं उत्तम धर्म और तपस्यामें लगे हुए मनको अत्यन्त निर्मल करके सारा कार्य करूँगा, परंतु जन्महेतुक कामनाओंमें नहीं लगूँगा; क्योंकि मनुष्य अपनी इच्छासे कर्म करता है, कर्मसे भोगकी प्राप्ति होती है। वे भोग शुभ और अशुभ दो प्रकारके होते हैं और वे ही दोनों सुख-दु:खके हेतु हैं। जगदम्बिके! न किसीसे दु:ख होता है न सुख, सब अपने कर्मका ही भोग है; इसलिये विद्वान् पुरुष कर्मसे विरत हो जाते हैं। सत्पुरुष निरन्तर आनन्दपूर्वक बुद्धिद्वारा हरिका स्मरण करनेसे, तपस्यासे तथा भक्तोंके सङ्गसे कर्मको ही निर्मूल कर देते हैं; क्योंकि इन्द्रिय और उनके विषयोंके संयोगसे उत्पन्न हुआ सुख तभीतक रहता है, जबतक उनका नाश नहीं हो जाता, परंतु हरिकीर्तनरूप सुख सब कालमें वर्तमान रहता है।

सतीदेवि! हरिध्यानपरायण भक्तोंकी आयु नष्ट नहीं होती; क्योंकि काल तथा मृत्युञ्जय उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते—यह ध्रुव है। वे चिरजीवी भक्त भारतवर्षमें चिरकालतक जीवित रहते हैं और सम्पूर्ण सिद्धियोंका ज्ञान प्राप्त करके स्वच्छन्दतापूर्वक सर्वत्रगामी होते हैं। हरिभक्तोंको पूर्वजन्मका स्मरण बना रहता है। वे अपने करोड़ों जन्मोंको जानते हैं और उनकी कथाएँ कहते हैं; फिर आनन्दके साथ स्वेच्छानुसार जन्म धारण करते हैं। वे स्वयं तो पवित्र होते ही हैं, अपनी लीलासे दूसरोंको तथा तीर्थोंको पवित्र कर देते हैं। इस पुण्यक्षेत्र भारतमें वे परोपकार और सेवाके लिये भ्रमण करते रहते हैं। वे वैष्णव जिस तीर्थमें गोदोहन-कालमात्र भी ठहर जाते हैं तो उनके चरणस्पर्शसे वसुन्धरा तत्काल ही पवित्र हो जाती है। जिन मनुष्योंको भक्तोंका दर्शन अथवा आलिङ्गन प्राप्त हो जाता है, वे मानो समस्त तीर्थोंमें भ्रमण कर चुके और उन्हें सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा मिल चुकी। जैसे सब कुछ भक्षण करनेपर भी अग्नि और समस्त पदार्थोंका स्पर्श करनेपर भी वायु दूषित नहीं कहे जाते, उसी प्रकार निरन्तर हरिमें चित्त लगानेवाले भक्त पापोंसे लिप्त नहीं होते। करोड़ों जन्मोंके अन्तमें मनुष्य-जन्म मिलता है। फिर मनुष्य-योनिमें बहुत-से जन्मोंके बाद उसे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है।

सती पार्वति! भक्तोंके सङ्गसे प्राणियोंके हृदयमें भक्तिका अंकुर उत्पन्न होता है और भक्तिहीनोंके दर्शनसे वह सूख जाता है। पुन: वैष्णवोंके साथ वार्तालाप करनेसे वह प्रफुल्लित हो उठता है। तत्पश्चात् वह अविनाशी अंकुर प्रत्येक जन्ममें बढ़ता रहता है। सती! वृद्धिको प्राप्त होते हुए उस वृक्षका फल हरिकी दासता है। इस प्रकार भक्तिके परिपक्व हो जानेपर परिणाममें वह श्रीहरिका पार्षद हो जाता है। फिर तो महाप्रलयके अवसरपर ब्रह्मा, ब्रह्मलोक तथा सम्पूर्ण सृष्टिका संहार हो जानेपर भी निश्चय ही उसका नाश नहीं होता। अम्बिके! इसलिये मुझे सदा नारायणके चरणोंमें भक्ति प्रदान कीजिये; क्योंकि विष्णुमाये! आपके बिना विष्णुमें भक्ति नहीं प्राप्त होती। आपकी तपस्या और पूजन तो लोकशिक्षाके लिये हैं; क्योंकि आप नित्यस्वरूपा सनातनी देवी हैं और समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली हैं। प्रत्येक कल्पमें श्रीकृष्ण गणेशरूपसे आपके पुत्र बनकर आपकी गोदमें आते हैं।

यों कहकर वे ब्राह्मण तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर बालरूप धारण करके महलके भीतर स्थित पार्वतीकी शय्यापर जा पहुँचे और जन्मे हुए बालककी भाँति घरकी छतके भीतरी भागकी ओर देखने लगे। उस बालकके शरीरकी आभा

शुद्ध चम्पकके समान थी। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। सब लोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी ज्योति बढ़ानेवाला था। कामदेवको विमोहित करनेवाला उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाका उपहास कर रहा था। सुन्दर कमलको तिरस्कृत करनेवाले उसके सुन्दर नेत्र थे। ओष्ठ और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ बिम्बाफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। गरुड़के चोंचकी भी निन्दा करनेवाली रुचिर नासिका थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह रमणीय शय्यापर सोया हुआ शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।

(अध्याय ८)

श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर शिव-पार्वतीद्वारा ब्राह्मणकी खोज, आकाशवाणीके सूचित करनेपर पार्वतीका महलमें जाकर पुत्रको देखना और शिवजीको बुलाकर दिखाना, शिव-पार्वतीका पुत्रको गोदमें लेकर आनन्द मनाना

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! इस प्रकार जब श्रीहरि अन्तर्धान हो गये, तब दुर्गा और शंकर ब्राह्मणकी खोज करते हुए चारों ओर घूमने लगे।

उस समय पार्वतीजी कहने लगीं—हे विप्रवर! आप तो अत्यन्त वृद्ध और भूखसे व्याकुल थे। हे तात! आप कहाँ चले गये? विभो! मुझे दर्शन दीजिये और मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिये। शिवजी! शीघ्र उठिये और उन ब्राह्मणदेवकी खोज कीजिये। वे क्षणमात्रके लिये उदास मनवाले हम लोगोंके सामने आये थे। परमेश्वर! यदि भूखसे पीड़ित अतिथि गृहस्थके घरसे अपूजित होकर चला जाता है तो क्या उस गृहस्थका जीवन व्यर्थ नहीं हो जाता? यहाँतक कि उसके पितर उसके द्वारा दिये गये पिण्डदान और तर्पणको नहीं ग्रहण करते तथा अग्नि उसकी दी हुई आहुति और देवगण उसके द्वारा निवेदित पुष्प एवं जल नहीं स्वीकार करते। उस अपवित्रका हव्य, पुष्प, जल और द्रव्य—सभी मदिराके तुल्य हो जाता है। उसका शरीर मल-सदृश और स्पर्श पुण्यनाशक हो जाता है।

इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई, जिसे शोकसे आतुर तथा विकलतासे युक्त दुर्गाने सुना। (आकाशवाणीने कहा—)जगन्माता! शान्त हो जाओ और मन्दिरमें अपने पुत्रकी ओर दृष्टिपात करो। वह साक्षात् गोलोकाधिपति परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण है तथा सुपुण्यक-व्रतरूपी वृक्षका सनातन फल है। योगी लोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्नमनसे निरन्तर ध्यान करते हैं; वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं; प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं, तथा जो पुण्यकी राशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योति रूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। यह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्त रूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल और लावण्यतामें करोड़ों कामदेवोंकी निन्दा करनेवाला है, अपने उस सुन्दर पुत्रको देखो। दुर्गे! तुम क्यों विलाप कर रही हो? अरे, यह क्षुधातुर ब्राह्मण नहीं है, यह तो विप्रवेषमें जनार्दन

हैं। अब कहाँ वह वृद्ध और कहाँ वह अतिथि? नारद! यों कहकर सरस्वती चुप हो गयीं।

तब उस आकाशवाणीको सुनकर सती पार्वती भयभीत हो अपने महलमें गयीं। वहाँ उन्होंने पलंगपर सोये हुए बालकको देखा। वह आनन्दपूर्वक मुस्कराते हुए महलकी छतके भीतरी भागको निहार रहा था। उसकी प्रभा सैकड़ों चन्द्रमाओंके तुल्य थी। वह अपने प्रकाशसमूहसे भूतलको प्रकाशित कर रहा था। हर्षपूर्वक स्वेच्छानुसार इधर-उधर देखते हुए शय्यापर उछल-कूद रहा था और स्तनपानकी इच्छासे रोते हुए 'उमा' ऐसा शब्द कर रहा था। उस अद्भुत रूपको देखकर सर्वमङ्गला पार्वती त्रस्त हो शंकरजीके संनिकट गयीं और उन प्राणेश्वरसे मङ्गल-वचन बोलीं।

पार्वतीने कहा—प्राणपति! घर चलिये और मन्दिरके भीतर चलकर प्रत्येक कल्पमें आप जिसका ध्यान करते हैं तथा जो तपस्याका फलदाता है, उसे देखिये। जो पुण्यका बीज, महोत्सवस्वरूप, 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेका कारण और भवसागरसे पार करनेवाला है, शीघ्र ही उस पुत्रके मुखका अवलोकन कीजिये; क्योंकि समस्त तीर्थोंमें स्नान तथा सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा-ग्रहणका पुण्य इस पुत्रदर्शनके पुण्यकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकता। सर्वस्व दान कर देनेसे जो पुण्य होता है तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वे सभी इस पुत्रदर्शन जन्य पुण्यके सोलहवें अंशके भी बराबर नहीं हैं।

पार्वतीके ये वचन सुनकर शिवजीका मन हर्षमग्न हो गया। वे तुरंत ही अपनी प्रियतमाके साथ अपने घर आये। वहाँ उन्होंने शय्यापर अपने पुत्रको देखा। उसकी कान्ति तपाये हुए स्वर्णके

समान उद्दीप्त थी। (फिर सोचने लगे—) मेरे हृदयमें जो अत्यन्त मनोहर रूप विद्यमान था, यह तो वही है। तत्पश्चात् दुर्गाने उस पुत्रको शय्यापरसे उठा लिया और उसे छातीसे लगाकर वे उसका चुम्बन करने लगीं। उस समय वे आनन्द-सागरमें निमग्न होकर यों कहने लगीं—'बेटा! जैसे दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर संतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिसे मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है। वत्स! जैसे एक पुत्रवाली माता चिरकालसे बाहर गये हुए अपने इकलौते पुत्रको आया हुआ देखकर परितुष्ट होती है, वैसे ही इस समय मैं भी संतुष्ट हो रही हूँ। जैसे मनुष्य चिरकालसे नष्ट हुए उत्तम रत्नको तथा अनावृष्टिके समय उत्तम वृष्टिको पाकर हर्षसे फूल उठता है, उसी प्रकार तुझ पुत्रको पाकर मैं भी हर्ष-गद्गद हो रही हूँ। जैसे चिरकालके पश्चात् आश्रयहीन अंधेका मन परम निर्मल नेत्रकी प्राप्तिसे प्रसन्न हो जाता है, वही अवस्था (तुझे पाकर) मेरे मनकी भी हो रही है। जैसे दुस्तर अगाध सागरमें गिरे हुए अथवा विपत्तिमें फँसे हुए नौका आदि

साधनविहीन मनुष्यका मन नौकाको पाकर आनन्दसे भर जाता है, वैसे ही मेरा मन भी आनन्दित हो रहा है। जैसे प्याससे सूखे हुए कण्ठवाले मनुष्योंका मन चिरकालके पश्चात् अत्यन्त शीतल एवं सुवासित जलको पाकर प्रसन्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी है। जैसे दावाग्निसे घिरे हुएको अग्निरहित स्थान और आश्रयहीनको आश्रय मिल जानेसे मनकी इच्छा पूरी हो जाती है, उसी प्रकार मेरी भी इच्छापूर्ति हो रही है। चिरकालसे व्रतोपवास करनेवाले भूखे मनुष्योंका मन जैसे सामने उत्तम अन्न देखकर प्रसन्न हो उठता है, उसी तरह मेरा मन भी हर्षित हो रहा है।' यों कहकर पार्वतीने अपने बालकको गोदमें लेकर प्रेमके साथ उसके मुखमें अपना स्तन दे दिया। उस समय उनका मन परमानन्दमें निमग्न हो रहा था। तत्पश्चात् भगवान् शंकरने भी प्रसन्नमनसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया। (अध्याय ९)

शिव, पार्वती तथा देवताओंद्वारा अनेक प्रकारका दान दिया जाना, बालकको देवताओं एवं देवियोंका शुभाशीर्वाद और इस मङ्गलाध्यायके श्रवणका फल

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर उन दोनों पति-पत्नी—शिव-पार्वतीने बाहर जाकर पुत्रकी मङ्गलकामनासे हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको नानाप्रकारके रत्न दान किये तथा भिक्षुओं और वन्दियोंको विभिन्न प्रकारकी वस्तुएँ बाँटीं। उस अवसरपर शंकरजीने अनेक प्रकारके बाजे बजवाये। हिमालयने ब्राह्मणोंको एक लाख रत्न, एक हजार श्रेष्ठ हाथी, तीन लाख घोड़े, दस लाख गौएँ, पाँच लाख स्वर्णमुद्राएँ तथा और भी जो मुक्ता, हीरे और रत्न आदि श्रेष्ठ मणियाँ थीं, वे सभी दान कीं। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकारके भी दान—जैसे वस्त्र, आभूषण और क्षीरसागरसे उत्पन्न सभी तरहके अमूल्य रत्न आदि दिये। कौतुकी विष्णुने ब्राह्मणोंको कौस्तुभमणिका दान दिया। ब्रह्माने हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको ऐसी विशिष्ट वस्तुएँ दान कीं जो सृष्टिमें परम दुर्लभ थीं तथा वे ब्राह्मण जिन्हें पाना चाहते थे। इसी तरह धर्म, सूर्य, इन्द्र, देवगण, मुनिगण, गन्धर्व, पर्वत तथा देवियोंने क्रमशः दान दिये। ब्रह्मन्! उस अवसरपर क्षीरसागरने हर्षित होकर कौतुकवश एक हजार माणिक्य, एक सौ कौस्तुभमणि, एक सौ हीरक, एक सहस्र हरे रंगकी श्रेष्ठ मणियाँ, एक लाख गो-रत्न, एक सहस्र गज-रत्न, श्वेतवर्णके अन्यान्य अमूल्य रत्न, एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ और अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए वस्त्र ब्राह्मणोंको प्रदान किये। सरस्वतीदेवीने अमूल्य रत्नोंका बना हुआ एक ऐसा हार दिया, जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ था। वह अत्यन्त निर्मल, साररूप और अपनी प्रभासे सूर्यके प्रकाशकी निन्दा करनेवाला, मणिजटित और हीरेके नगोंसे सुशोभित था। उस रमणीय हारके मध्यमें कौस्तुभमणि पिरोयी हुई थी। सावित्रीने हर्षित होकर एक बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित त्रिलोकीका साररूप हार और सब तरहके आभूषण प्रदान किये। आनन्दमग्न कुबेरने एक लाख सोनेकी सिलें, अनेक प्रकारके धन और एक सौ अमूल्य रत्न दान किये। मुने! शिवपुत्रके जन्मोत्सवमें उपस्थित सभी लोगोंने इस प्रकार ब्राह्मणोंको दान देकर तत्पश्चात् उस शिशुका दर्शन किया। उस समय वे सब परमानन्दमें निमग्न थे। मुने! उस दानमें ब्राह्मणों तथा वन्दियोंको इतना धन मिला था कि वे उसका भार ढोनेमें असमर्थ थे, इसलिये बोझसे घबराकर मार्गमें ठहर-ठहरकर चलते थे। वे सभी विश्राम कर चुकनेपर पूर्वकालके दाताओंकी कथाएँ कहते थे, जिसे वृद्ध एवं युवा भिक्षुक प्रेमपूर्वक सुनते थे।

नारद! उस अवसरपर विष्णुने आनन्दमग्न होकर दुन्दुभिका शब्द कराया, गीत गवाया, नाच कराया, वेदों और पुराणोंका पाठ कराया। फिर मुनिवरोंको बुलवाकर हर्षपूर्वक उनका पूजन किया, माङ्गलिक कार्य कराया और उनसे आशीर्वाद दिलाया। तत्पश्चात् देवी तथा देवगणोंके साथ वे स्वयं भी उस बालकको शुभाशीर्वाद देने लगे।

विष्णुने कहा—बालक! तुम दीर्घायु, ज्ञानमें शिवके सदृश, पराक्रममें मेरे तुल्य और सम्पूर्ण सिद्धियोंके ईश्वर होओ।

ब्रह्माने कहा—वत्स! तुम्हारे यशसे जगत् पूर्ण हो जाय, तुम शीघ्र ही सर्वपूज्य हो जाओ और सबसे पहले तुम्हारी परम दुर्लभ पूजा हो।

धर्मने कहा—पार्वतीनन्दन! तुम मेरे समान परम धार्मिक, सर्वज्ञ, दयालु, हरिभक्त और श्रीहरिके समान परम दुर्लभ होओ।

महादेवने कहा—प्राणप्रिय पुत्र! तुम मेरी भाँति दाता, हरिभक्त, बुद्धिमान्, विद्यावान्, पुण्यवान्, शान्त और जितेन्द्रिय होओ।

लक्ष्मीने कहा—बेटा! तुम्हारे घरमें तथा शरीरमें मेरी सनातनी स्थिति बनी रहे और मेरी ही तरह तुम्हें शान्त एवं मनोहर रूपवाली पतिव्रता पत्नी प्राप्त हो।

सरस्वतीने कहा—पुत्र! मेरे ही तुल्य तुम्हें परमोत्कृष्ट कवित्वशक्ति, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति और विवेचन-शक्तिकी प्राप्ति हो।

सावित्रीने कहा—वत्स! मैं वेदमाता हूँ, अतः तुम मेरे मन्त्रजपमें तत्पर होकर शीघ्र ही वेदवादियोंमें श्रेष्ठ तथा वेदज्ञानी हो जाओ।

हिमालयने कहा—बेटा! तुम्हारी बुद्धि सदा श्रीकृष्णमें लगी रहे, श्रीकृष्णमें ही तुम्हारी सनातनी भक्ति हो, तुम श्रीकृष्णके समान गुणवान् होओ और सदा श्रीकृष्णपरायण बने रहो।

मेनकाने कहा—वत्स! तुम गम्भीरतामें समुद्रके समान, सुन्दरतामें कामदेवके सदृश, लक्ष्मीवानोंमें श्रीपतिके तुल्य और धर्ममें धर्मकी तरह होओ।

वसुन्धराने कहा—वत्स! तुम मेरी तरह क्षमाशील, शरणदाता, सम्पूर्ण रत्नोंसे सम्पन्न, विघ्नरहित, विघ्नविनाशक और शुभके आश्रयस्थान होओ।

पार्वतीने कहा—बेटा! तुम अपने पिताके समान महान् योगी, सिद्ध, सिद्धियोंके प्रदाता, शुभकारक, मृत्युञ्जय, ऐश्वर्यशाली और अत्यन्त निपुण होओ।

तदनन्तर समागत सभी ऋषियों, मुनियों और सिद्धोंने आशीर्वाद दिया और ब्राह्मणों तथा वन्दियोंने सब प्रकारकी मङ्गल-कामना की। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने गणेशका जन्मवृत्तान्त, जो सम्पूर्ण मङ्गलोंका मङ्गल करनेवाला तथा समस्त विघ्नोंका विनाशक है, पूर्णतया तुमसे वर्णन कर दिया। जो मनुष्य अत्यन्त समाहित होकर इस सुमङ्गलाध्यायको सुनता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंसे युक्त होकर मङ्गलोंका आवासस्थान हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, कृपणको निरन्तर धन प्रदान करनेकी शक्ति, भार्यार्थीको भार्या, प्रजाकामीको प्रजा और रोगीको आरोग्य प्राप्त होता है। दुर्भगा स्त्रीको सौभाग्य, भ्रष्ट हुआ पुत्र, नष्ट हुआ धन और प्रवासी पति मिल जाता है तथा शोकग्रस्तको सदा आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। मुने! गणेशाख्यानके श्रवणसे मनुष्यको जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह फल निश्चय ही इस अध्यायके श्रवणसे मिल जाता है। यह मङ्गलाध्याय जिसके घरमें विद्यमान रहता है, वह सदा मङ्गलयुक्त रहता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यात्राकालमें अथवा पुण्यपर्वपर जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे इसका श्रवण करता है, वह श्रीगणेशकी कृपासे अपने सभी मनोरथोंको पा जाता है। (अध्याय १०)

गणेशको देखनेके लिये शनैश्चरका आना और पार्वतीके पूछनेपर अपने द्वारा किसी वस्तुके न देखनेका कारण बताना

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार उस बालकको आशीर्वाद देकर श्रीहरि उस सभामें देवताओं और मुनियोंके साथ एक रत्ननिर्मित श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके दक्षिणभागमें शंकर, वामभागमें प्रजापति ब्रह्मा और आगे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा जगत्के साक्षी धर्मने आसन ग्रहण किया। ब्रह्मन्! फिर धर्मके समीप सूर्य, इन्द्र, चन्द्रमा, देवगण, मुनिसमुदाय और पर्वतसमूह सुखपूर्वक आसनोंपर बैठे। इसी बीच महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर शंकरनन्दन गणेशको देखनेके लिये वहाँ आये। उनका मुख अत्यन्त नम्र था, आँखें कुछ मुँदी हुई थीं और मन एकमात्र श्रीकृष्णमें लगा हुआ था; अतः वे बाहर-भीतर श्रीकृष्णका स्मरण कर रहे थे। वे तपःफलको खानेवाले, तेजस्वी, धधकती हुई अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान, अत्यन्त सुन्दर, श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी और श्रेष्ठ थे। उन्होंने वहाँ पहले विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य, देवगणों और मुनिवरोंको प्रणाम किया। फिर उनकी आज्ञासे वे उस बालकको देखनेके लिये गये। भीतर जाकर शनैश्चरने सिर झुकाकर पार्वतीदेवीको नमस्कार किया। उस समय वे पुत्रको छातीसे चिपटाये रत्नसिंहासनपर विराजमान हो आनन्दपूर्वक मुस्करा रही थीं। पाँच सखियाँ निरन्तर उनपर श्वेत चँवर डुलाती जाती थीं। वे सखीद्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलको चबा रही थीं। उनके शरीरपर अग्निसे तपाकर शुद्ध की हुई सुन्दर साड़ी शोभायमान थी। रत्नोंके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। सहसा सूर्यनन्दन शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर दुर्गाने उन्हें शीघ्र ही शुभाशीर्वाद दिया और फिर उनसे वार्तालाप करके उनका कुशल-मङ्गल पूछा।

पार्वतीने पुनः पूछा—ग्रहेश्वर! इस समय तुम्हारा मुख नीचेकी ओर क्यों झुका हुआ है तथा तुम मुझे अथवा इस बालककी ओर देख क्यों नहीं रहे हो? साधो! मैं इसका कारण सुनना चाहती हूँ।

शनैश्चरने कहा—साध्वि! सारे जीव स्वकर्मानुसार अपनी करनीका फल भोगते हैं; क्योंकि जो भी शुभ अथवा अशुभ कर्म होता है, उसका करोड़ों कल्पोंमें भी नाश नहीं होता। जीव कर्मानुसार ब्रह्मा, इन्द्र और सूर्यके भवनमें जन्म लेता है। कर्मसे ही वह मनुष्यके घरमें और कर्मसे ही पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है। कर्मसे वह नरकमें जाता है और कर्मसे ही उसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है। स्वकर्मानुसार वह चक्रवर्ती राजा हो जाता है और अपने ही कर्मसे वही नौकर भी होता है। माता! कर्मसे ही वह सुन्दर होता है और अपने कर्मके फलस्वरूप वह सदा रोगग्रस्त बना रहता है। कर्मानुसार ही वह विषयप्रेमी और अपने कर्मसे ही विषयोंसे निर्लिप्त रहता है। कर्मसे ही वह लोकमें धनवान्, कर्मसे ही दरिद्र, कर्मसे ही उत्तम कुटुम्बवाला और कर्मसे ही बन्धुओंके लिये कण्टकरूप हो जाता है। अपने कर्मसे ही जीवको उत्तम पत्नी, उत्तम पुत्र और निरन्तर सुखकी प्राप्ति होती है तथा स्वकर्मसे ही वह पुत्रहीन, दुष्ट स्वभावा स्त्रीका स्वामी अथवा स्त्रीहीन होता है।

शंकरवल्लभे! मैं एक परम गोपनीय इतिहास, यद्यपि वह लज्जाजनक तथा माताके समक्ष कहने योग्य नहीं है, कहता हूँ, सुनिये। मैं बचपनसे ही श्रीकृष्णका भक्त था। मेरा मन सदा एकमात्र श्रीकृष्णके ध्यानमें ही लगा रहता था। मैं विषयोंसे विरक्त होकर निरन्तर तपस्यामें रत रहता था।

पिताजीने चित्ररथकी कन्यासे मेरा विवाह कर दिया। वह सती-साध्वी नारी अत्यन्त तेजस्विनी तथा सतत तपस्यामें रत रहनेवाली थी। एक दिन ऋतुस्नान करके वह मेरे पास आयी। उस समय मैं भगवच्चरणोंका ध्यान कर रहा था। मुझे बाह्यज्ञान बिलकुल नहीं था। पत्नीने अपना ऋतुकाल निष्फल जानकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम अब जिसकी ओर दृष्टि करोगे, वही नष्ट हो जायगा'। तदनन्तर जब मैं ध्यानसे विरत हुआ, तब मैंने उस सतीको संतुष्ट किया; परंतु अब तो वह शापसे मुक्त करानेमें असमर्थ थी; अतः पश्चात्ताप करने लगी। माता! इसी कारण मैं किसी वस्तुको अपने नेत्रोंसे नहीं देखता और तभीसे मैं जीवहिंसाके भयसे स्वाभाविक ही अपने मुखको नीचे किये रहता हूँ। मुने! शनैश्चरकी बात सुनकर पार्वती हँसने लगीं और नर्तकियों तथा किन्नरियोंका सारा समुदाय ठहाका मारकर हँस पड़ा। (अध्याय ११)

पार्वतीके कहनेसे शनैश्चरका गणेशपर दृष्टिपात करना, गणेशके सिरका कटकर गोलोकमें चला जाना, पार्वतीकी मूर्च्छा, श्रीहरिका आगमन और गणेशके धड़पर हस्तीका सिर जोड़कर जीवित करना, फिर पार्वतीको होशमें लाकर बालकको आशीर्वाद देना, पार्वतीद्वारा शनैश्चरको शाप

श्रीनारायणजी कहते हैं— नारद! शनैश्चरका वचन सुनकर दुर्गाने परमेश्वर श्रीहरिका स्मरण किया और 'सारा जगत् ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत ही है' यों कहा। फिर दैववशीभूता पार्वतीदेवीने कौतूहलवश शनैश्चरसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे बालककी ओर देखो। भला, इस निषेक (कर्मफलभोग)-को कौन हटा सकता है?' तब पार्वतीका वचन सुनकर शनैश्चर स्वयं मन-ही-मन यों विचार करने लगे—'अहो! क्या मैं इस पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करूँ अथवा न करूँ? क्योंकि यदि मैं बालकको देख लूँगा तो निश्चय ही उसका अनिष्ट हो जायगा।' यों कहकर धर्मात्मा शनैश्चरने धर्मको साक्षी बनाकर बालकको तो देखनेका विचार किया, परंतु बालककी माताको नहीं। शनैश्चरका मन तो पहलेसे ही खिन्न था। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु भी सूख गये थे; फिर भी उन्होंने अपने बायें नेत्रके कोनेसे शिशुके मुखकी ओर निहारा। मुने! शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका मस्तक धड़से अलग हो गया। तब शनैश्चरने

अपनी आँख फेर ली और फिर वे नीचे मुख करके खड़े हो गये। इसके बाद उस बालकका खूनसे लथपथ हुआ सारा शरीर तो पार्वतीकी गोदमें पड़ा रह गया, परंतु मस्तक अपने अभीष्ट गोलोकमें जाकर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। यह देखकर पार्वतीदेवी बालकको छातीसे चिपटाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगीं और उन्मत्तकी

भाँति भूमिपर गिरकर मूर्च्छित हो गयीं। तब वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा कैलासवासी जन यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उस समय उनकी दशा चित्रलिखित पुत्तलिकाके समान जड़ हो गयी।

इस प्रकार उन सबको मूर्च्छित देखकर श्रीहरि गरुड़पर सवार हुए और उत्तरदिशामें स्थित पुष्पभद्राके निकट गये। वहाँ पुष्पभद्रा नदीके तटपर वनमें स्थित एक गजेन्द्रको देखा, जो निद्राके वशीभूत हो बच्चोंसे घिरकर हथिनीके साथ सो रहा था। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था, मन परमानन्दसे पूर्ण था और वह सुरतके परिश्रमसे थका हुआ था। फिर तो श्रीहरिने शीघ्र ही सुदर्शनचक्रसे उसका सिर काट लिया और रक्तसे भीगे हुए उस मनोहर मस्तकको बड़े हर्षके साथ गरुड़पर रख लिया। गजके कटे हुए अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। तब अमङ्गल शब्द करती हुई उसने अपने शावकोंको भी जगाया। फिर वह शोकसे विह्वल हो शावकोंके साथ बिलख-बिलखकर चीत्कार करने लगी। तत्पश्चात् जो लक्ष्मीके स्वामी हैं, जिनका स्वरूप परम शान्त है; जिनके करकमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं; जो पीताम्बरधारी, परात्पर, जगत्के स्वामी, निषेकका खण्डन करनेमें समर्थ, निषेकको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक, निषेकके भोगके दाता और भोगके निस्तारके कारणस्वरूप हैं तथा जो गरुड़पर आरूढ़ हो मुस्कराते हुए सुदर्शनचक्रको घुमा रहे हैं—उन परमेश्वरका उसने स्तवन किया। विप्रवर! उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उसे वर दिया और दूसरे गजका मस्तक काटकर इसके धड़से जोड़ दिया। फिर उन ब्रह्मवेत्ताने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया और उस गजेन्द्रके सर्वाङ्गमें अपने चरणकमलका स्पर्श कराते हुए कहा—'गज! तू अपने कुटुम्बके साथ एक कल्पपर्यन्त जीवित रह।' यों कहकर मनके समान वेगशाली भगवान् कैलासपर आ पहुँचे। वहाँ पार्वतीके वासस्थानपर आकर उन्होंने उस बालकको अपनी छातीसे चिपटा लिया और उस हाथीके मस्तकको सुन्दर बनाकर बालकके धड़से जोड़ दिया। फिर ब्रह्मस्वरूप भगवान्ने ब्रह्मज्ञानसे हुंकारोच्चारण किया और खेल-खेलमें ही उसे जीवित कर दिया। पुनः श्रीकृष्णने पार्वतीको सचेत करके उस शिशुको उनकी गोदमें रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञानद्वारा पार्वतीको समझाना आरम्भ किया।

विष्णुने कहा—शिवे! तुम तो जगत्की बुद्धिस्वरूपा हो। क्या तुम नहीं जानतीं कि ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् अपने कर्मानुसार फल भोगता है। प्राणियोंका जो स्वकर्मार्जित भोग है, वह सौ करोड़ कल्पोंतक प्रत्येक योनिमें शुभ-अशुभ फलरूपसे नित्य प्राप्त होता रहता है। सती! इन्द्र अपने कर्मवश कीड़ेकी योनिमें जन्म ले सकते हैं और कीड़ा पूर्वकर्मफलानुसार इन्द्र भी हो सकता है। पूर्वजन्मार्जित कर्मफलके बिना सिंह मक्खीको भी मारनेमें असमर्थ है और मच्छर अपने प्राक्तन कर्मके बलसे हाथीको भी मार डालनेकी शक्ति रखता है। सुख-दुःख, भय-शोक, आनन्द—ये कर्मके ही फल हैं। इनमें सुख और हर्ष उत्तम कर्मके और अन्य पापकर्मके परिणाम हैं*। कर्मका भोग शुभ-अशुभ-रूपसे इहलोक अथवा परलोकमें प्राप्त होता है, परंतु कर्मोपार्जनके योग्य पुण्यक्षेत्र भारत ही है। स्वयं श्रीकृष्ण कर्मके फलदाता, विधिके विधाता, मृत्युके भी मृत्यु, कालके काल, निषेकके

* सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥
(गणपतिखण्ड १२। २७)

निषेककर्ता, संहर्ताके भी संहारक, पालकके भी पालक, परात्पर, परिपूर्णतम गोलोकनाथ हैं। हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिस पुरुषकी कलाएँ हैं, महाविराट् जिसका अंश है, जिसके रोम-विवरमें जगत् भरे हैं, कोई-कोई उनके कलांश हैं और कोई-कोई कलांशके भी अंश हैं और जो सम्पूर्ण चराचर जगत्-स्वरूप हैं, उन्हीं श्रीकृष्णमें विनायक स्थित हैं।

इस प्रकार श्रीविष्णुका कथन सुनकर पार्वतीका मन संतुष्ट हो गया। तब वे उन गदाधर भगवान्‌को प्रणाम करके शिशुको दूध पिलाने लगीं। तदनन्तर प्रसन्न हुई पार्वतीने शंकरजीकी प्रेरणासे अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उन कमलापति भगवान् विष्णुकी स्तुति की। तब विष्णुने शिशुको तथा शिशुकी माताको आशीर्वाद दिया और अपने आभूषण कौस्तुभमणिको बालकके गलेमें डाल दिया। ब्रह्माने अपना मुकुट और धर्मने रत्नका आभूषण दिया। फिर क्रमशः देवियोंने तथा उपस्थित सभी देवताओं, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और समस्त महिलाओंने यथोचितरूपसे रत्न प्रदान किये। उस समय महादेवजीका हृदय अत्यन्त हर्षमग्न था। वे विष्णुका स्तवन करने लगे। नारद! वहाँ मरकर जीवित हुए बालकको देखकर शिव-पार्वतीने ब्राह्मणोंको असंख्य रत्न दान किये। मरे हुए बालकके जी उठनेपर हर्षगद्गद हुए हिमालयने वन्दियोंको एक सौ हाथी और एक सहस्र घोड़े प्रदान किये तथा देवगण हर्षित होकर ब्राह्मणोंको और सभी नारियोंने वन्दियोंको दान दिया। लक्ष्मीपति विष्णुने माङ्गलिक कार्य सम्पन्न कराया, ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त किया और वेदों तथा पुराणोंका पाठ कराया। तत्पश्चात् शनैश्चरको लज्जायुक्त देखकर पार्वतीको क्रोध आ गया और उन्होंने उस सभाके बीच शनैश्चरको यों शाप देते हुए कहा—'तुम अङ्गहीन हो जाओ।' (अध्याय १२)

विष्णु आदि देवताओंद्वारा गणेशकी अग्रपूजा, पार्वतीकृत विशेषोपचारसहित गणेशपूजन, विष्णुकृत गणेशस्तवन और 'संसारमोहन' नामक कवचका वर्णन

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर विष्णुने शुभ समय आनेपर देवों तथा मुनियोंके साथ सर्वश्रेष्ठ उपहारोंसे उस बालकका पूजन किया और उससे यों कहा—'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है; अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।' यों कहकर श्रीहरिने उसके गलेमें वनमाला डाल दी और उसे मुक्तिदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करके अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सुन्दर वस्तुएँ दीं और मुनियों तथा देवोंके साथ उसका इस प्रकार नामकरण किया—विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—उसके ये आठ नाम रखे गये। पुनः सनातन श्रीहरिने उन मुनियोंको बुलवाकर उसे आशीर्वाद दिलाया। तदनन्तर सभी देव-देवियोंने तथा मुनियों आदिने अनेक प्रकारके उपहार गणेशको दिये और फिर क्रमशः उन्होंने भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की।

नारद! तदनन्तर जगज्जननी पार्वतीने, जिनका मुखकमल हर्षके कारण विकसित हो रहा था, अपने पुत्रको रत्ननिर्मित सिंहासनपर बैठाया। फिर उन्होंने आनन्दपूर्वक समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए सौ कलशोंसे मुनियोंद्वारा वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे स्नान कराया और अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए दो वस्त्र दिये। फिर पाद्यके लिये गोदावरीका जल, अर्घ्यके निमित्त गङ्गाजल और आचमनके हेतु दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनसे युक्त पुष्करका जल लाकर दिया। रत्नपात्रमें रखे हुए

शक्करयुक्त द्रवका मधुपर्क प्रदान किया। पुनः स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णुतैल, बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए सुन्दर आभूषण, पारिजातके पुष्पोंकी सौ मालाएँ, मालती, चम्पक आदि अनेक प्रकारके पुष्प, तुलसीके अतिरिक्त पूजोपयोगी तरह-तरहके पत्र, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, ढेर-के-ढेर रत्नप्रदीप और धूप सादर समर्पित किये। तत्पश्चात् उसे प्रिय लगनेवाले नैवेद्यों—तिलके लड्डू, जौ और गेहूँके चूर्ण, पूड़ी, अत्यन्त स्वादिष्ट तथा मनोहर पक्वान्न, शर्करामिश्रित स्वादिष्ट स्वस्तिकके आकारका बना हुआ त्रिकोण पकवानविशेष, गुड़युक्त खील, चिउड़ा और अगहनीके चावलके आटेके बने हुए पदार्थके नानाप्रकारके व्यञ्जनोंके साथ पहाड़ लगा दिया। नारद! फिर उस पूजनमें सुन्दरी पार्वतीने हर्षमें भरकर एक लाख घड़े, दूध, एक लाख घड़े दही, तीन लाख घड़े मधु और पाँच लाख घड़े घी सादर अर्पित किया। नारद! फिर अनार और बेलके असंख्य फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, आम, कटहल, केला और नारियलके असंख्य फल दिये। इनके सिवा और भी जो ऋतुके अनुसार विभिन्न देशोंमें उत्पन्न हुए स्वादिष्ट एवं मधुर पके हुए फल थे, उन्हें भी महामायाने समर्पित किया। पुनः आचमन और पान करनेके लिये अत्यन्त निर्मल कर्पूर आदिसे सुवासित स्वच्छ गङ्गाजल दिया। नारद! इसके बाद उसी प्रकार सुवासित उत्तम रमणीय पानके बीड़े और बायनसे परिपूर्ण सैकड़ों स्वर्णपात्र दिये।

तदनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र और प्रिय अमात्योंने गिरिजाके पुत्रका पूजन किया। वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवता—

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥'

—इसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक वस्तुएँ समर्पित करके परमानन्दमें मग्न थे। इस मन्त्रमें बत्तीस अक्षर हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंका दाता, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका फल देनेवाला और सर्वसिद्धिप्रद है। इसके पाँच लाख जपसे ही जापकको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। भारतवर्षमें जिसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह विष्णु-तुल्य हो जाता है। उसके नाम-स्मरणसे सारे विघ्न भाग जाते हैं। निश्चय ही वह महान् वक्ता, महासिद्ध, सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ कवियोंमें भी श्रेष्ठ गुणवान्, विद्वानोंके गुरुका गुरु तथा जगत्के लिये साक्षात् वाक्पति हो जाता है। उस उत्सवके अवसरपर आनन्दमग्न हुए देवताओंने इस मन्त्रसे शिशुकी पूजा करके अनेक प्रकारके बाजे बजवाये, उत्सव कराया, ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त किया; फिर उन ब्राह्मणोंको तथा विशेषतया वन्दियोंको दान दिया।

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर उस सभाके बीच विष्णु परमभक्तिपूर्वक सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक उन गणेश्वरकी भलीभाँति पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीविष्णुने कहा—ईश! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ, परंतु आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि आप इच्छारहित, सम्पूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियोंके गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, ज्ञानराशिस्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायुके समान अत्यन्त निर्लेप, क्षतरहित, सबके साक्षी, संसार-सागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ मायारूपी नौकाके कर्णधारस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता, वरदानियोंके भी ईश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता, सिद्धिके साधन, ध्यानसे अतिरिक्त ध्येय, ध्यानद्वारा असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मके ज्ञाता, धर्म और अधर्मका फल प्रदान करनेवाले, संसार-वृक्षके

बीज, अंकुर और उसके आश्रय, स्त्री-पुरुष और नपुंसकके स्वरूपमें विराजमान तथा इनकी इन्द्रियोंसे परे, सबके आदि, अग्रपूज्य, सर्वपूज्य, गुणके सागर, स्वेच्छासे सगुण ब्रह्म तथा स्वेच्छासे ही निर्गुण ब्रह्मका रूप धारण करनेवाले, स्वयं प्रकृतिरूप और प्रकृतिसे परे प्राकृतरूप हैं। शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं न चतुर्मुख ब्रह्मा ही; न सरस्वतीकी शक्ति है और न मैं ही कर सकता हूँ। न चारों वेदोंकी ही शक्ति है, फिर उन वेदवादियोंकी क्या गणना?

इस प्रकार देवसभामें देवताओंके साथ सुरेश्वर गणेशकी स्तुति करके सुराधीश रमापति मौन हो गये। मुने! जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इस विष्णुकृत गणेशस्तोत्रका सतत पाठ करता है, विघ्नेश्वर उसके समस्त विघ्नोंका विनाश कर देते हैं, सदा उसके सब कल्याणोंकी वृद्धि होती है और वह स्वयं कल्याणजनक हो जाता है। जो यात्राकालमें भक्तिपूर्वक इसका पाठ करके यात्रा करता है, निस्संदेह उसकी सभी अभीप्सित कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। उसके द्वारा देखा गया दुःस्वप्न सुस्वप्नमें परिणत हो जाता है। उसे कभी दारुण ग्रहपीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। उसके शत्रुओंका विनाश और बन्धुओंका विशेष उत्कर्ष होता है। निरन्तर विघ्नोंका क्षय और सदा सम्पत्तिकी वृद्धि होती रहती है। उसके घरमें पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाली लक्ष्मी स्थिररूपसे वास करती हैं। वह इस लोकमें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका भागी होकर अन्तमें विष्णु-पदको प्राप्त हो जाता है। तीर्थों, यज्ञों और सम्पूर्ण महादानोंसे जो फल मिलता है, वह उसे श्रीगणेशकी कृपासे प्राप्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है।

नारदजीने कहा—प्रभो! गणेशके स्तोत्र तथा उनके मनोहर पूजनको तो मैंने सुन लिया, अब मुझे जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले कवचके सुननेकी इच्छा है।

श्रीनारायणने कहा—नारद! उस देवसभाके मध्य जब गणेशकी पूजा समाप्त हुई, तब शनैश्चरने सबके तारक जगद्गुरु विष्णुसे कहा।

शनैश्चर बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! सम्पूर्ण दुःखोंके विनाश और दुःखकी पूर्णतया शान्तिके लिये विघ्नहन्ता गणेशके कवचका वर्णन कीजिये। प्रभो! हमारा मायाशक्तिके साथ विवाद हो गया है; अतः उस विघ्नके प्रशमनके लिये मैं उस कवचको धारण करूँगा।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने कवचकी गोपनीयता और महिमा बतलाते हुए कहा—सूर्यनन्दन! दस लाख जप करनेसे कवच सिद्ध हो जाता है। जो मनुष्य कवच सिद्ध कर लेता है, वह मृत्युको जीतनेमें समर्थ हो जाता है। सिद्ध-कवचवाला मनुष्य उसके ग्रहणमात्रसे भूतलपर वाग्मी, चिरजीवी, सर्वत्र विजयी और पूज्य हो जाता है। इस मालामन्त्रको तथा इस पुण्यकवचको धारण करनेवाले मनुष्योंके सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, बेताल आदि, बालग्रह, ग्रह तथा क्षेत्रपाल आदि कवचके शब्दमात्रके श्रवणसे भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं। जैसे गरुड़के निकट सर्प नहीं जाते, उसी तरह कवचधारी पुरुषोंके संनिकट आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) और भयदायक शोक नहीं फटकते। इसे अपने सरल स्वभाववाले गुरुभक्त शिष्यको ही बतलाना चाहिये।

शनैश्चर! इस 'संसारमोहन' नामक कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है और स्वयं लम्बोदर गणेश देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें इसका विनियोग कहा गया है। मुने! यह सम्पूर्ण कवचोंका सारभूत है। '**ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा**' यह मेरे मस्तककी रक्षा करे। बत्तीस

अक्षरोंवाला मन्त्र सदा मेरे ललाटको बचावे। '**ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गम्**' यह निरन्तर मेरे नेत्रोंकी रक्षा करे। विघ्नेश भूतलपर सदा मेरे तालुकी रक्षा करें। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं**' यह निरन्तर मेरी नासिकाकी रक्षा करे तथा '**ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा**' यह मेरे ओठको सुरक्षित रखे। षोडशाक्षर-मन्त्र मेरे दाँत, तालु और जीभको बचावे। '**ॐ लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा**' सदा गण्डस्थलकी रक्षा करे। '**ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा**' सदा कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं गं गजाननाय स्वाहा**' सदा कंधोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं विनायकाय स्वाहा**' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। '**ॐ क्लीं ह्रीं**' कंकालकी और '**गं**' वक्षःस्थलकी रक्षा करे। विघ्ननिहन्ता हाथ, पैर तथा सर्वाङ्गको सुरक्षित रखे। पूर्वदिशामें लम्बोदर और अग्निकोणमें विघ्ननायक रक्षा करें। दक्षिणमें विघ्नेश और नैर्ऋत्यकोणमें गजानन रक्षा करें। पश्चिममें पार्वतीपुत्र, वायव्यकोणमें शंकरात्मज, उत्तरमें परिपूर्णतम श्रीकृष्णका अंश, ईशानकोणमें एकदन्त और ऊर्ध्वभागमें हेरम्ब रक्षा करें। अधोभागमें सर्वपूज्य गणाधिप सब ओरसे मेरी रक्षा करें। शयन और जागरणकालमें योगियोंके गुरु मेरा पालन करें। वत्स! इस प्रकार जो सम्पूर्ण मन्त्रसमूहोंका विग्रहस्वरूप है, उस परम अद्भुत संसारमोहन नामक कवचका तुमसे वर्णन कर दिया। सूर्यनन्दन! इसे प्राचीनकालमें गोलोकके वृन्दावनमें रासमण्डलके अवसरपर श्रीकृष्णने मुझ विनीतको दिया था। वही मैंने तुम्हें प्रदान किया है। तुम इसे जिस-किसीको मत दे डालना। यह परम श्रेष्ठ, सर्वपूज्य और सम्पूर्ण संकटोंसे उबारनेवाला है। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरुकी अभ्यर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दक्षिण भुजापर धारण करता है, वह निस्संदेह विष्णु ही है। ग्रहेन्द्र! हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय-यज्ञ इस कवचकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। जो मनुष्य इस कवचको जाने बिना शंकर-सुवन गणेशकी भक्ति करता है, उसके लिये सौ लाख जपनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।* इस प्रकार सूर्यपुत्र शनैश्चरको यह कवच प्रदान करके सुरेश्वर विष्णु चुप हो गये। तब समीपमें स्थित परमानन्दमें निमग्न हुए देवताओंने कहा। (अध्याय १३)

---

* संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरः स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने। ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदाऽवतु॥
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च संततं पातु लोचनम्। तालुकं पातु विघ्नेशः संततं धरणीतले॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति च संततं पातु नासिकाम्। ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम।
दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः॥
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदाऽवतु। ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु॥
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम्। करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत्॥
प्राच्यां लम्बोदरः पातु आग्नेय्यां विघ्ननायकः। दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः॥
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः। कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः। अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः॥
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले। वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज॥

पार्वतीको देवताओंद्वारा कार्तिकेयका समाचार प्राप्त होना, शिवजीका कृत्तिकाओंके पास दूतोंको भेजना, वहाँ कार्तिकेय और नन्दीका संवाद

तदनन्तर, पहले शंकरका वीर्य पृथ्वीपर गिरनेसे कार्तिकेयके उत्पन्न होनेकी बात आयी थी, उसीके सम्बन्धमें बात छिड़नेपर—

श्रीधर्मने कहा—भगवन्! प्रकोपके कारण रतिसे उठते हुए शंकरजीका वह अमोघ वीर्य भूतलपर गिरा था, यह मुझे ज्ञात है।

भूमिने कहा—ब्रह्मन्! उस वीर्यका वहन करना अत्यन्त कठिन था, इसलिये जब मैं उसका भार सहन न कर सकी, तब मैंने उसे अग्निमें डाल दिया; अतः मुझ अबलाको क्षमा कीजिये।

अग्निने कहा—जगन्नाथ! मैंने भी उस वीर्यका भार उठानेमें असमर्थ होकर उसे सरकंडोंके वनमें फेंक दिया। भला, दुर्बलका पुरुषार्थ ही क्या और उसका यश ही कैसा?

वायुने कहा—विष्णो! स्वर्णरेखा नदीके तटपर सरकंडोंमें गिरा हुआ वह वीर्य तुरंत ही अत्यन्त सुन्दर बालक हो गया।

श्रीसूर्यने कहा—भगवन्! कालचक्रसे प्रेरित हुआ मैं उस रोते हुए बालकको देखकर अस्ताचलकी ओर चला गया; क्योंकि मैं रातमें ठहरनेके लिये असमर्थ हूँ।

चन्द्रमाने कहा—विष्णो! उसी समय कृत्तिकाओंका समुदाय बदरिकाश्रमसे आ रहा था। उन्होंने उस रुदन करते हुए बालकको देखा और उसे उठाकर वे अपने भवनको चली गयीं।

जलने कहा—प्रभो! कृत्तिकाओंने उस रोते हुए शिशुको अपने घर लाकर और उसके भूखे होनेपर उसे अपने स्तनोंका दूध पिलाकर बढ़ाया। वह शिव-पुत्र सूर्यसे भी अधिक प्रभावशाली था।

दोनों संध्याओंने कहा—भगवन्! इस समय वह बालक छहों कृत्तिकाओंका पोष्य पुत्र है। उन्होंने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उसका 'कार्तिकेय' ऐसा नाम रखा है।

रात्रिने कहा—प्रभो! वे कृत्तिकाएँ उस बालकको आँखोंसे ओझल नहीं करती हैं। उनके लिये वह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेमपात्र है; क्योंकि जो पालन करनेवाला होता है, उसीका वह पुत्र कहलाता है।

दिनने कहा—देव! जो-जो वस्तुएँ त्रिलोकीमें दुर्लभ हैं और अपने स्वादके लिये प्रशंसित हैं, उन्हींको वे उस बालकको खिलाती हैं।

जब उस सभामें उन सब लोगोंने प्रसन्नमनसे श्रीहरिसे यों कहा, तब उनके उस कथनको सुनकर मधुसूदन संतुष्ट हो गये। पुत्रका पूरा समाचार पाकर पार्वतीका मन हर्षसे खिल उठा। उन्होंने ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न, बहुत-सा धन और विभिन्न प्रकारके सभी वस्त्र दिये। तत्पश्चात् लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, मेना आदि सभी महिलाओंने तथा विष्णु आदि सभी देवताओंने ब्राह्मणोंको धन दिया।

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! पुत्रका समाचार मिल जानेपर जब विष्णु, देवगण, मुनिसमुदाय और पर्वतोंने पार्वतीसहित शंकरको प्रेरित किया, तब उन्होंने लाखों क्षेत्रपाल, भूत, बेताल, यक्ष, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी और भैरवोंके साथ महान् बल-पराक्रमसम्पन्न वीरभद्र,

---

मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ग्रहेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥
(गणपतिखण्ड १३। ७९—९६)

विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कबन्ध, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदन्त, भगन्दर, गोधामुख, दधिमुख आदि दूतोंको, जो धधकती हुई आगकी लपटके समान उद्दीप्त हो रहे थे, भेजा। उन सभी शिव-दूतोंने, जो नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित थे, शीघ्र ही जाकर कृत्तिकाओंके भवनको चारों ओरसे घेर लिया। उन्हें देखकर सभी कृत्तिकाओंका मन भयसे व्याकुल हो गया। तब वे ब्रह्मतेजसे उद्दीप्त होते हुए कार्तिकेयके पास जाकर कहने लगीं।

कृत्तिकाओंने कहा—बेटा कार्तिकेय! असंख्यों कराल सेनाओंने भवनको चारों ओरसे घेर लिया है और हमें पता भी नहीं है कि ये किसकी हैं।

तब कार्तिकेय बोले—माताओ! आपलोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये। मेरे रहते आपको भय कैसा? यह कर्मभोग दुर्निवार्य है, इसे कौन हटा सकता है। इसी बीच सेनापति नन्दिकेश्वर भी वहाँ कार्तिकेयके समक्ष उपस्थित हुए और कृत्तिकाओंसे बोले।

नन्दिकेश्वरने कहा—भ्राता! संहारकर्ता सुरश्रेष्ठ शंकर और माता पार्वतीद्वारा भेजे गये शुभ समाचारको मुझसे श्रवण करो। कैलासपर्वतपर गणेशके माङ्गलिक जन्मोत्सवके अवसरपर सभामें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवता उपस्थित हैं। वहाँ गिरिराजकिशोरीने जगत्‌का पालन करनेवाले विष्णुको सम्बोधित करके उनसे तुम्हारे अन्वेषणके लिये कहा। तब विष्णुने तुम्हारी प्राप्तिके निमित्त क्रमशः उन सभी देवोंसे पूछा। उनमेंसे प्रत्येकने यथोचित उत्तर भी दिया। उन्हींमें धर्म-अधर्मके साक्षी धर्म आदि सभी देवताओंने परमेश्वरको तुम्हारे यहाँ कृत्तिकाओंके भवनमें रहनेकी सूचना दी। प्राचीनकालमें शिव-पार्वतीकी जो एकान्त क्रीड़ा हुई थी, उसमें देवताओंद्वारा देखे जानेपर शम्भुका शुक्र भूतलपर गिर पड़ा था। भूमिने उस शुक्रको अग्निमें और अग्निने उसे सरकंडोंके वनमें फेंक दिया। वहाँसे इन कृत्तिकाओंने तुम्हें पाया है। अब तुम अपने घर चलो। वहाँ तुम्हें सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंकी प्राप्ति होगी, विष्णु देवताओंको साथ लेकर तुम्हारा अभिषेक करेंगे और तब तुम तारकासुरका वध करोगे। तुम विश्वसंहर्ता शंकरके पुत्र हो, अतः ये कृत्तिकाएँ तुम्हें उसी तरह नहीं छिपा सकतीं, जैसे शुष्क वृक्ष अपने कोटरमें अग्निको गुप्त नहीं रख सकता। तुम तो विश्वमें दीप्तिमान् हो। इन कृत्तिकाओंके घरमें तुम्हारी उसी प्रकार शोभा नहीं हो रही है, जैसे महाकूपमें पड़े हुए चन्द्रमा शोभित नहीं होते। जैसे सूर्य मनुष्यके हाथोंकी ओटमें नहीं छिप सकते, उसी तरह तुम भी इनके अङ्गतेजसे आच्छादित न होकर जगत्‌को प्रकाशित कर रहे हो। शम्भुनन्दन! तुम तो जगद्‌व्यापी विष्णु हो, अतः इन कृत्तिकाओंके व्याप्य नहीं हो, जैसे आकाश किसीका व्याप्य नहीं है, बल्कि वह स्वयं ही सबका व्यापक है। तुम विषयोंसे निर्लिप्त योगीन्द्र हो तथा विश्वके आधार और परमेश्वर हो। ऐसी दशामें कृत्तिकाओंके भवनमें तुम सर्वेश्वरका निवास होना उसी प्रकार सम्भव नहीं है, जैसे क्षुद्र गौरैयाके उदरमें गरुड़का रहना असम्भव है। तुम भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रह तथा गुणों और तेजोंकी राशि हो। देवगण तुम्हें उसी तरह नहीं जानते जैसे योगहीन पुरुष ज्ञानसे अनभिज्ञ होता है। जैसे मोहितचित्तवाले भक्तिहीन मनुष्योंको हरिकी उत्कृष्ट भक्तिका ज्ञान नहीं होता, उसी तरह ये कृत्तिकाएँ तुम्हें कैसे जान सकती हैं; क्योंकि तुम अनिर्वचनीय हो। भ्राता! जो लोग जिसके गुणको नहीं जानते, वे उसका अनादर ही करते हैं; जैसे मेढक एक साथ रहनेवाले कमलोंका आदर नहीं करते।

कार्तिकेयने कहा—भ्राता! जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञान है, वह सब मुझे ज्ञात है। तुम भी तो ज्ञानी हो; क्योंकि मृत्युञ्जयके आश्रित हो। ऐसी दशामें तुम्हारी क्या प्रशंसा की

जाय। भाई! कर्मानुसार जिनका जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है, वे उन्हीं योनियोंमें निरन्तर रहते हुए निर्वृति लाभ करते हैं। वे चाहे संत हों अथवा मूर्ख हों, जिन्हें कर्मभोगके परिणामस्वरूप जिस योनिकी प्राप्ति हुई है, वे विष्णुमायासे मोहित होकर उसी योनिको बहुत बढ़कर समझते हैं। जो सनातनी विष्णुमाया सबकी आदि, सर्वस्व प्रदान करनेवाली और विश्वका मङ्गल करनेवाली हैं, उन्हीं जगज्जननीने इस समय भारतवर्षमें शैलराजकी पत्नीके गर्भसे जन्म धारण किया है और दारुण तपस्या करके शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सारी सृष्टि कृत्रिम है, अतएव मिथ्या ही है। सभी श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुए हैं और समय आनेपर केवल श्रीकृष्णमें ही विलीन हो जाते हैं। प्रत्येक कल्पमें सृष्टिके विधानमें मैं नित्य होते हुए भी मायासे आबद्ध होकर जन्म-धारण करता हूँ, उस समय प्रत्येक जन्ममें जगज्जननी पार्वती मेरी माता होती हैं। जगत्‌में जितनी नारियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिसे उत्पन्न हुई हैं। उनमेंसे कुछ प्रकृतिकी अंशभूता हैं तो कुछ कलात्मिका तथा कुछ कलांशके अंशसे प्रकट हुई हैं। ये ज्ञानसम्पन्ना योगिनी कृत्तिकाएँ प्रकृतिकी कलाएँ हैं। इन्होंने निरन्तर अपने स्तनके दूध तथा उपहारसे मेरा पालन-पोषण किया है। अतः मैं उनका पोष्य पुत्र हूँ और पोषण करनेके कारण ये मेरी माताएँ हैं। साथ ही मैं उन प्रकृतिदेवी (पार्वती)-का भी पुत्र हूँ; क्योंकि तुम्हारे स्वामी शंकरजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ हूँ। नन्दिकेश्वर! मैं गिरिराजनन्दिनीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, अतः जैसे वे मेरी धर्ममाता हैं, वैसे ही ये कृत्तिकाएँ भी सर्वसम्मतिसे मेरी धर्म-माताएँ हैं; क्योंकि स्तन पिलानेवाली (धाय), गर्भमें धारण करनेवाली (जननी), भोजन देनेवाली (पाचिका), गुरुपत्नी, अभीष्ट देवताकी पत्नी, पिताकी पत्नी (सौतेली माता), कन्या, बहिन, पुत्रवधू, पत्नीकी माता (सास), माताकी माता (नानी), पिताकी माता (दादी), सहोदर भाईकी पत्नी, माताकी बहिन (मौसी), पिताकी बहिन (बूआ) तथा मामी—ये सोलह मनुष्योंकी वेदविहित माताएँ कहलाती हैं।* ये कृत्तिकाएँ सम्पूर्ण सिद्धियोंकी ज्ञाता, परमैश्वर्यसम्पन्न और तीनों लोकोंमें पूजित हैं। ये क्षुद्र नहीं हैं, बल्कि ब्रह्माकी कन्याएँ हैं। तुम भी सत्त्वसम्पन्न तथा शम्भुके पुत्रके समान हो और विष्णुने तुम्हें भेजा है; अतः चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। वहाँ देवसमुदायका दर्शन करूँगा। (अध्याय १४-१५)

कार्तिकेयका नन्दिकेश्वरके साथ कैलासपर आगमन, स्वागत, सभामें जाकर विष्णु आदि देवोंको नमस्कार करना और शुभाशीर्वाद पाना

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! शंकरसुवन कार्तिकेय नन्दिकेश्वरसे यों कहकर शीघ्र ही कृत्तिकाओंको समझाते हुए नीतियुक्त वचन बोले।

कार्तिकेयने कहा—माताओ! मैं देवसमुदाय, बन्धुवर्ग तथा माताको देखना चाहता हूँ; अतः शंकरजीके निवासस्थानपर जाऊँगा, इसके लिये आपलोग मुझे आज्ञा प्रदान करें। सारा जगत्, शुभदायक जन्म-कर्म, संयोग-वियोग सभी दैवके

---

* स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका॥
सगर्भकन्याभगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः॥
(गणपतिखण्ड १५। ३८—४०)

अधीन है। दैवसे बढ़कर दूसरा कोई बली नहीं है। वह दैव श्रीकृष्णके वशमें रहनेवाला है; क्योंकि वे दैवसे परे हैं। इसीलिये संतलोग उन ऐश्वर्यशाली परमात्माका निरन्तर भजन करते हैं। अविनाशी श्रीकृष्ण अपनी लीलासे दैवको बढ़ाने और घटानेमें समर्थ हैं। उनका भक्त दैवके वशीभूत नहीं होता—ऐसा निर्णीत है। इसलिये आपलोग इस दुःखदायक मोहका परित्याग कीजिये और जो सुखदाता, मोक्षप्रद, सारसर्वस्व, जन्म-मृत्युके भयके विनाशकर्ता, परमानन्दके जनक और मोह-जालके उच्छेदक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवगण जिनका निरन्तर भजन करते हैं, उन गोविन्दकी भक्ति कीजिये। इस भवसागरमें मैं आपलोगोंका कौन हूँ और आपलोग मेरी कौन हैं? संसार-प्रवाहका वह सारा कर्म फेनकी भाँति पुञ्जीभूत हो गया है। (वस्तुतः कोई किसीका नहीं है।) संयोग अथवा वियोग—यह सब ईश्वरकी इच्छासे ही होता है। यहाँतक कि सारा ब्रह्माण्ड ईश्वरके अधीन है, वह भी स्वतन्त्र नहीं है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। सारी त्रिलोकी जलके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर है, फिर भी मायासे मोहित चित्तवाले लोग इस अनित्य जगत्में मायाका विस्तार करते हैं; परंतु जो श्रीकृष्णपरायण संत हैं, वे जगत्में रहते हुए भी वायुकी भाँति लिप्त नहीं होते। इसलिये माताओ! आपलोग मोहका परित्याग करके मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।

यों कहकर ऐश्वर्यशाली कार्तिकेयने उन कृत्तिकाओंको नमस्कार किया और फिर मन-ही-मन श्रीहरिका स्मरण करते हुए शंकरजीके पार्षदोंके साथ यात्राके लिये प्रस्थान किया। इसी बीच उन्होंने वहाँ एक उत्तम रथको देखा। वह बहुमूल्य रत्नोंका बना हुआ था, जिसे विश्वकर्माने भलीभाँति निर्माण किया था, उसमें स्थान-स्थानपर माणिक्य और हीरे जड़े गये थे, जिससे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। पारिजात-पुष्पोंकी मालावलीसे वह सुशोभित था। मणियोंके दर्पण तथा श्वेत चँवरोंसे वह अत्यन्त उद्भासित हो रहा था और चित्रकारीयुक्त रमणीय क्रीडा-भवनोंसे वह भलीभाँति सुसज्जित था। वह मनोहर तो था ही, उसका विस्तार भी बड़ा था। उसमें सौ पहिये लगे थे। उसका वेग मनके समान था और श्रेष्ठ पार्षद उसे घेरे हुए थे। उस रथको पार्वतीने भेजा था। उस रथपर कार्तिकेयको चढ़ते देखकर कृत्तिकाओंका हृदय दुःखसे फटा जा रहा था। उनके केश खुल गये थे और वे शोकसे व्याकुल थीं। सहसा चेतना प्राप्त होनेपर अपने सामने स्कन्दको देख वे अत्यन्त शोकके कारण ठगी-सी रह गयीं; फिर वहीं भयवश उन्मत्तकी भाँति कहने लगीं।

कृत्तिकाओंने कहा—हाय! अब हमलोग क्या करें, कहाँ चली जायँ? बेटा! हमारे आश्रय तो तुम्हीं हो। इस समय तुम हमलोगोंको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? यह तुम्हारे लिये धर्मसङ्गत बात नहीं है। हमलोगोंने बड़े स्नेहसे तुम्हें पाला-पोसा है, अतः तुम धर्मानुसार हमारे पुत्र हो। भला, उपयुक्त पुत्र मातृवर्गोंका परित्याग कर दे—यह भी कोई धर्म है? यों कहकर सभी कृत्तिकाओंने कार्तिकेयको छातीसे चिपका लिया और पुत्र-वियोगजन्य दारुण दुःखके कारण वे पुनः मूर्च्छित हो गयीं। मुने! तत्पश्चात् कुमार कार्तिकेयने आध्यात्मिक वचनोंद्वारा उन्हें समझाया और फिर उनके तथा पार्षदोंके साथ वे उस रथपर सवार हुए। मुने! यात्राकालमें उन्होंने अपने सामने साँड़, गजराज, घोड़ा, जलती हुई आग, भरा हुआ सुवर्ण-कलश, अनेक प्रकारके पके हुए फल, पति-पुत्रसे युक्त स्त्री, प्रदीप, उत्तम मणि, मोती, पुष्पमाला, मछली और चन्दन—इन माङ्गलिक वस्तुओंको, वामभागमें शृगाल, नकुल, कुम्भ और शुभदायक शवको तथा दक्षिणभागमें राजहंस,

मयूर, खञ्जन, शुक, कोकिल, कबूतर, शङ्खचिल्ल (सफेद चील), माङ्गलिक चक्रवाक, कृष्णसार-मृग, सुरभी और चमरी गौ, श्वेत चँवर, सवत्सा धेनु और शुभ पताकाको देखा। उस समय नाना प्रकारके बाजोंकी मङ्गलध्वनि सुनायी पड़ने लगी, हरिकीर्तन तथा घण्टा और शङ्खका शब्द होने लगा। इस प्रकार मङ्गल-शकुनोंको देखते तथा सुनते हुए कार्तिकेय आनन्दपूर्वक उस मनके समान वेगशाली रथके द्वारा क्षणमात्रमें ही पिताके मन्दिरपर जा पहुँचे। वहाँ कैलासपर पहुँचकर वे अविनाशी वट-वृक्षके नीचे कृत्तिकाओं तथा श्रेष्ठ पार्षदोंके साथ कुछ देरके लिये ठहर गये। उस नगरके राजमार्ग बड़े मनोहर थे। उनपर चारों ओर पद्मराग और इन्द्रनीलमणि जड़ी हुई थी। समूह-के-समूह केलेके खंभे गड़े थे, जिनपर रेशमी सूतमें गुँथे हुए चन्दनके पल्लवोंकी बन्दनवार लटक रही थी। वह पूर्ण कुम्भोंसे सुशोभित था। उसपर चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया था। असंख्यों रत्नप्रदीपों तथा मणियोंसे उसकी विशेष शोभा हो रही थी। वह सदा उत्सवोंसे व्याप्त, हाथोंमें दूब और पुष्प लिये हुए वन्दियों और ब्राह्मणोंसे युक्त तथा पति-पुत्रवती साध्वी नारियोंसे समन्वित था। समस्त मङ्गल-कार्य करके पार्वती देवी लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, तुलसी, रति, अरुन्धती, अहल्या, दिति, सुन्दरी तारा, अदिति, शतरूपा, शची, संध्या, रोहिणी, अनसूया, स्वाहा, संज्ञा, वरुण-पत्नी, आकूति, प्रसूति, देवहूति, मेनका, एक रंग तथा एक प्रकृतिवाली मैनाक-पत्नी, वसुन्धरा और मनसादेवीको आगे करके वहाँ आयीं। तदनन्तर देवगण, मुनिसमुदाय, पर्वत, गन्धर्व तथा किन्नर सब-के-सब आनन्दमग्न हो कुमारके स्वागतमें गये। महेश्वर भी नाना प्रकारके बाजों, रुद्रगणों, पार्षदों, भैरवों तथा क्षेत्रपालोंके साथ वहाँ पधारे। तत्पश्चात् शक्तिधारी कार्तिकेय पार्वतीको निकट देखकर

हर्षगद्गद हो गये। उस समय वे तुरंत ही रथसे उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करने लगे। तब पार्वतीने कार्तिकेयको देखकर लक्ष्मी आदि देवियों, मुनि-पत्नियों और शिव आदि सभीसे यत्नपूर्वक परम भक्तिके साथ सम्भाषण किया और उन्हें अपनी गोदमें उठाकर वे चूमने लगीं। फिर शंकर, देवगण, पर्वत, शैलपत्नियों, पार्वती आदि देवियों तथा सभी मुनियोंने कार्तिकेयको शुभाशीर्वाद दिया। तदनन्तर कुमार गणोंके साथ शिव-भवनमें आये। वहाँ सभाके मध्यमें उन्होंने क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुको देखा। वे रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। धर्म, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवता उन्हें घेरे हुए थे। उनका मुख प्रसन्न था तथा उसपर थोड़ी-थोड़ी मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर हो रहे थे। उनपर श्वेत चँवर डुलाया जा रहा था और देवेन्द्र तथा मुनीन्द्र उनका स्तवन कर रहे थे। उन जगन्नाथको देखकर कार्तिकेयके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने भक्तिभावपूर्वक सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद

ब्रह्मा, धर्म, देवताओं और हर्षित मुनिवरोंमें प्रत्येकको प्रणाम किया और उनका शुभाशीर्वाद पाया। फिर बारी-बारीसे सबसे कुशल-समाचार पूछकर वे एक रत्नसिंहासनपर बैठे। उस समय पार्वतीसहित शंकरने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। (अध्याय १६)

कार्तिकेयका अभिषेक तथा देवताओंद्वारा उन्हें उपहार-प्रदान

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर जगदीश्वर विष्णुने प्रसन्नमनसे शुभ मुहूर्त निश्चय करके कार्तिकेयको एक रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठाया और कौतुकवश नाना प्रकारके झाँझ-मँजीरा तथा यन्त्रमय बाजे बजवाये। फिर अमूल्य रत्नोंके बने हुए सैकड़ों घड़ोंसे, जो वेदमन्त्रोंद्वारा अभिषिक्त तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके जलोंसे परिपूर्ण थे, कार्तिकेयको हर्षपूर्वक स्नान कराया। तत्पश्चात् कार्तिकेयको प्रसन्नमनसे बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित किरीट, दो माङ्गलिक बाजूबंद, अमूल्य रत्नोंके बने हुए बहुत-से आभूषण, अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए दो दिव्य वस्त्र, क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई कौस्तुभमणि और वनमाला दी। ब्रह्माने यज्ञसूत्र, वेद, वेदमाता गायत्री, संध्या-मन्त्र, कृष्ण-मन्त्र, श्रीहरिका स्तोत्र और कवच, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा शत्रुविनाशिनी विद्या प्रदान की। धर्मने दिव्य धर्मबुद्धि और समस्त जीवोंपर दया समर्पित की। शिवने परमोत्कृष्ट मृत्युञ्जय-ज्ञान, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान, निरन्तर सुख प्रदान करनेवाला परम मनोहर तत्त्वज्ञान, योगतत्त्व, सिद्धितत्त्व, परम दुर्लभ ब्रह्मज्ञान, त्रिशूल, पिनाक, फरसा, शक्ति, पाशुपतास्त्र, धनुष और संधान-संहारके ज्ञानसहित संहारास्त्र अर्पित किया। वरुणने श्वेत छत्र और रत्नोंकी माला, महेन्द्रने गजराज, अमृतसागरने अमृतका कलश, सूर्यने मनके समान वेगशाली रथ और मनोहर कवच, यमने दमदण्ड और अग्निने बहुत बड़ी शक्ति प्रदान की। इसी प्रकार अन्यान्य सभी देवताओंने भी हर्षपूर्वक नाना प्रकारके शस्त्र उन्हें भेंट किये। कामदेवने हर्षमग्न होकर उन्हें कामशास्त्र और क्षीरसागरने अमूल्य रत्न तथा रत्नोंके बने हुए विशिष्ट नूपुर दिये। पार्वतीका मन तो उस समय परमानन्दमें निमग्न था, उन्होंने मुस्कराते हुए महाविद्या, सुशीलाविद्या, मेधा, दया, स्मृति, अत्यन्त निर्मल बुद्धि, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, धृति, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति और श्रीहरिकी दासता प्रदान की। नारद! प्रजापतिने देवसेनाको, जो रत्नाभरणोंसे विभूषित, परम विनीत, उत्तम शीलवती, मनको हरण कर लेनेवाली अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसे विद्वान् लोग शिशुओंकी रक्षा करनेवाली महाषष्ठी कहते हैं, वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयके अर्पित कर दिया। इस प्रकार कुमारका अभिषेक करके सभी देवता, मुनिगण और गन्धर्व जगदीश्वरोंको प्रणाम करके अपने-अपने घर चले गये।

नारद! इसके बाद शंकरने नारायण, ब्रह्मा और धर्मकी स्तुति की और फिर धर्मका आलिङ्गन करके परमप्रिय श्रीहरिको मस्तक झुकाया। तदनन्तर शंकरद्वारा सत्कृत होकर शैलराज हिमालय गणोंसहित प्रेमपूर्वक वहाँसे बिदा हुए। इस प्रकार जो-जो लोग वहाँ आये थे, वे सभी आनन्दपूर्वक प्रस्थान कर गये। तब महेश्वर देवी पार्वतीके साथ बड़े आनन्दसे वहाँ रहने लगे। कुछ समय बीतनेके बाद शंकरने पुनः उन सभी देवोंको बुलाकर विवाह-विधिके अनुसार पुष्टिको महात्मा गणेशके हाथों समर्पित कर दिया। इस प्रकार दोनों पुत्रों तथा गणोंके साथ रहती हुई पार्वतीका मन बड़ा प्रसन्न था।

वे सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले स्वामीके चरणकमलोंकी सेवा करती रहती थीं। नारद! इस प्रकार मैंने देवताओंका समागम, पार्वतीको पुत्र-प्राप्ति, कुमारका अभिषेक, उनका पूजन और विवाह तथा गणेशका विवाह—यह सारा वृत्तान्त तुमसे वर्णन कर दिया। अब तुम्हारे मनमें कौन-सी अभिलाषा है? फिर और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय १७)

गणेशके शिरश्छेदनके वर्णनके प्रसङ्गमें शंकरद्वारा सूर्यका मारा जाना, कश्यपका शिवको शाप देना, सूर्यका जीवित होना और माली-सुमालीकी रोगनिवृत्ति

नारदने पूछा—महाभाग नारायण! आप तो वेदवेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् हैं। परमेश्वर! मैं आपसे एक बहुत बड़े संदेहका समाधान जानना चाहता हूँ। प्रभो! जो देवेश्वर महात्मा शंकरके पुत्र तथा विघ्नोंके विनाशक हैं, उन गणेश्वरके लिये जो विघ्न घटित हुआ, उसका क्या कारण है? जब परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा श्रीमान् गोलोकनाथ स्वयं ही अपने अंशसे पार्वतीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे, तब उन ग्रहाधिराज भगवान् श्रीकृष्णके मस्तकका ग्रहकी दृष्टिसे कट जाना बड़े आश्चर्यकी बात है। आप इस वृत्तान्तको मुझे बतलानेकी कृपा करें।

श्रीनारायणने कहा—ब्रह्मन्! विघ्नेश्वरका यह विघ्न जिस कारणसे हुआ था, उस प्राचीन इतिहासको तुम सावधान होकर श्रवण करो। नारद! एक समयकी बात है। भक्तवत्सल शंकरने माली और सुमालीको मारनेवाले सूर्यपर बड़े क्रोधके साथ त्रिशूलसे प्रहार किया। वह शिवके समान तेजस्वी त्रिशूल अमोघ था। अत: उसकी चोटसे सूर्यकी चेतना नष्ट हो गयी और वे तुरंत ही रथसे नीचे गिर पड़े। जब कश्यपजीने देखा कि मेरे पुत्रकी आँखें ऊपरको चढ़ गयी हैं और वह चेतनाहीन हो गया है, तब वे उसे छातीसे लगाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगे। उस समय सारे देवताओंमें हाहाकार मच गया। वे सभी भयभीत होकर जोर-जोरसे रुदन करने लगे। अन्धकार छा जानेसे सारा जगत् अंधीभूत हो गया। तब ब्रह्माके पौत्र तपस्वी कश्यपजी, जो ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे, अपने पुत्रको प्रभाहीन देखकर शिवको शाप देते हुए बोले—'जिस प्रकार आज तुम्हारे त्रिशूलसे मेरे पुत्रका वक्ष:स्थल विदीर्ण हो गया है, उसी तरह तुम्हारे पुत्रका मस्तक कट जायगा।' शिवजी आशुतोष तो हैं ही; अत: क्षणमात्रमें ही उनका क्रोध जाता रहा। तब उन्होंने उसी क्षण ब्रह्मज्ञानद्वारा सूर्यको जीवित कर दिया। तदनन्तर जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अंशसे उत्पन्न हैं, वे त्रिगुणात्मक भक्तवत्सल सूर्य चेतना प्राप्त करके पिताके समक्ष खड़े हुए। फिर भक्तिपूर्वक पिताको तथा शंकरको नमस्कार किया। साथ ही (पिताद्वारा दिये गये) शम्भुके शापको जानकर वे कश्यपजीपर क्रुद्ध हो गये, जिससे उन्होंने अपने विषयको ग्रहण नहीं किया और क्रोधावेशमें यों कहा—'ईश्वरके बिना यह सब कुछ तुच्छ, अनित्य और नश्वर है, अत: विद्वान्‌को चाहिये कि वह मङ्गलकारक सत्यको छोड़कर अमङ्गलकी इच्छा न करे। इसलिये अब मैं विषयका परित्याग करके परमेश्वर श्रीकृष्णका भजन करूँगा।' यह सुनकर देवताओंने ब्रह्माको प्रेरित किया, तब उन प्रभुने शीघ्रतापूर्वक वहाँ पधारकर सूर्यको समझाया और उन्हें इनके कार्यपर नियुक्त किया। फिर ब्रह्मा, शिव और कश्यप आनन्दपूर्वक सूर्यको आशीर्वाद देकर अपने-अपने भवनको चले गये। इधर सूर्य भी अपनी राशिपर आरूढ़ हुए। तत्पश्चात् माली

और सुमाली व्याधिग्रस्त हो गये। उनके शरीरमें सफेद कोढ़ हो गयी, जिससे सारा अङ्ग गल गया, शक्ति जाती रही और प्रभा नष्ट हो गयी। तब स्वयं ब्रह्माने उन दोनोंसे कहा—'सूर्यके कोपसे ही तुम दोनों हतप्रभ हो गये हो और तुम्हारा शरीर गल गया है, अतः तुमलोग सूर्यका भजन करो।' फिर ब्रह्मा उन दोनोंको सूर्यका कवच, स्तोत्र और पूजाकी सारी विधि बतलाकर ब्रह्मलोकको चले गये। मुने! तदनन्तर वे दोनों पुष्करमें जाकर सूर्यका भजन करने लगे। वहाँ वे तीनों काल स्नान करके भक्तिपूर्वक उत्तम सूर्य-मन्त्रके जपमें तल्लीन हो गये। फिर समयानुसार सूर्यसे वरदान पाकर वे पुनः अपने असली रूपमें आ गये। इस प्रकार मैंने यह सारा वृत्तान्त वर्णन कर दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय १८)

ब्रह्माद्वारा माली-सुमालीको सूर्यके कवच और स्तोत्रकी प्राप्ति तथा सूर्यकी कृपासे उन दोनोंका नीरोग होना

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर नारायण बोले—नारद! मैं श्रीसूर्यके पूजनका क्रम तथा सम्पूर्ण पापों और व्याधियोंसे विमुक्त करनेवाले कवच और स्तोत्रका वर्णन करता हूँ, सुनो। जब माली और सुमाली—ये दोनों दैत्य व्याधिग्रस्त हो गये, तब उन्होंने स्तवन करनेके लिये शिव-मन्त्र प्रदान करनेवाले ब्रह्माका स्मरण किया। ब्रह्माने वैकुण्ठमें जाकर कमलापति विष्णुसे पूछा। उस समय शिव भी वहीं श्रीहरिके संनिकट विराजमान थे।

ब्रह्मा बोले—हरे! माली और सुमाली दोनों दैत्य व्याधिग्रस्त हो गये हैं, अतः उनके रोगके विनाशका कौन-सा उपाय है—यह बतलाइये।

विष्णुने कहा—ब्रह्मन्! वे दोनों पुष्करमें जाकर वर्षभरतक मेरे अंशभूत व्याधिहन्ता सूर्यकी सेवा करें, इससे वे रोगमुक्त हो जायँगे।

शंकरने कहा—जगदीश्वर! उन दोनोंको रोगनाशक महात्मा सूर्यका स्तोत्र, कवच और मन्त्र, जो कल्पतरुके समान है, प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! स्वयं श्रीहरि तो सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं और सूर्य रोगनाशक हैं। जिसका जो-जो विषय है, अपने विषयमें ये दोनों सम्पत्ति-प्रदायक हैं। इस प्रकार विष्णु और शिवकी अनुमति पाकर ब्रह्मा उन दैत्योंके घर गये। तब दैत्योंने उन्हें प्रणाम करके कुशल-समाचार पूछा और बैठनेके लिये आसन दिया। उन दैत्योंका शरीर गल गया था, उसमेंसे पीब और दुर्गन्ध निकल रही थी। आहाररहित होनेके कारण वे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये थे। तब स्वयं दयालु ब्रह्माने उन दोनोंसे कहा।

ब्रह्मा बोले—वत्सो! तुम दोनों कवच, स्तोत्र और पूजाकी विधिका क्रम ग्रहण करके पुष्करमें जाओ और वहाँ विनम्रभावसे सूर्यका भजन करो।

उन दोनोंने कहा—ब्रह्मन्! किस विधिसे और किस मन्त्रसे हम सूर्यका भजन करें, उनका स्तोत्र कौन-सा है और कवच क्या है—वह सब हमें प्रदान कीजिये।

ब्रह्माने कहा—वत्स! वहाँ त्रिकाल स्नान करके इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भास्करकी भलीभाँति सेवा करनेपर तुमलोग नीरोग हो जाओगे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—)'**ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा**'—इस मन्त्रसे सावधानतया सूर्यका पूजन करके उन्हें भक्तिपूर्वक सोलह उपहार प्रदान करना चाहिये। यों ही पूरे वर्षभरतक करना होगा। इससे तुमलोग निश्चय ही रोगमुक्त हो जाओगे।

पूर्वकालमें अहल्याका हरण करनेके कारण गौतमके शापसे जब इन्द्रके शरीरमें सहस्र भग हो गये थे, उस संकट-कालमें बृहस्पतिजीने प्रेमपूर्वक पापयुक्त इन्द्रको जो कवच दिया था, वही अपूर्व सूर्यकवच मैं तुमलोगोंको प्रदान करता हूँ।

बृहस्पतिने कहा—इन्द्र! सुनो। मैं उस परम अद्भुत कवचका वर्णन करता हूँ जिसे धारण करके मुनिगण पवित्र हो भारतवर्षमें जीवन्मुक्त हो गये। इस कवचके धारण करनेवालेके संनिकट व्याधि भयके मारे उसी प्रकार नहीं जाती है, जैसे गरुड़को देखकर साँप दूर भाग जाते हैं। इसे अपने शिष्यको, जो गुरुभक्त और शुद्ध हो, बतलाना चाहिये परंतु जो दूसरेके दुष्ट स्वभाववाले शिष्यको देता है, वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस जगद्‌विलक्षण कवचके प्रजापति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और स्वयं सूर्य देवता हैं। व्याधिनाश तथा सौन्दर्यके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह सारस्वरूप कवच तत्काल ही पवित्र करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है। '**ह्रीं ॐ क्लीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा**' मेरे मस्तककी रक्षा करे। उपर्युक्त अष्टादशाक्षर-मन्त्र सदा मेरे कपालको बचावे। '**ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा**' मेरी नासिकाको सुरक्षित रखे। सूर्य मेरे नेत्रोंकी, विकर्तन पुतलियोंकी, भास्कर ओठोंकी और दिनकर दाँतोंकी रक्षा करें। प्रचण्ड मेरे गण्डस्थलका, मार्तण्ड कानोंका, मिहिर स्कन्धोंका और पूषा जंघाओंका सदा पालन करें। रवि मेरे वक्ष:स्थलकी, स्वयं सूर्य नाभिकी और सर्वदेवनमस्कृत कङ्कालकी सदा देख-रेख करें। ब्रध्न हाथोंको, प्रभाकर पैरोंको और सामर्थ्यशाली विभाकर मेरे सारे शरीरको निरन्तर सुरक्षित रखें। वत्स! यह 'जगद्विलक्षण' नामक कवच अत्यन्त मनोहर तथा त्रिलोकीमें परम दुर्लभ है। इसे मैंने तुम्हें बतला दिया। पूर्वकालमें पुलस्त्यने पुष्करक्षेत्रमें प्रसन्न होकर इसे मनुको दिया था, वही मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे तुम जिस-किसीको मत दे देना। इस कवचकी कृपासे तुम्हारा रोग नष्ट हो जायगा और तुम नीरोग तथा श्रीसम्पन्न हो जाओगे—इसमें संशय नहीं है। एक लाख वर्षतक हविष्य-भोजनसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वह फल निश्चय ही इस कवचके धारणसे प्राप्त हो जाता है। इस कवचको जाने बिना जो मूर्ख सूर्यकी भक्ति करता है, उसे दस लाख जप करनेपर भी मन्त्रसिद्धि नहीं प्राप्त होती।

ब्रह्माने कहा—वत्स! इस कवचको धारण करके सूर्यका स्तवन करनेपर तुमलोग रोग-मुक्त हो जाओगे—यह निश्चित है। सूर्य-स्तवनका वर्णन सामवेदमें हुआ है। यह व्याधिविनाशक, सर्वपापहारी, परमोत्कृष्ट, साररूप और श्री तथा आरोग्यको देनेवाला है।

भगवन्! जो सनातन ब्रह्म, परमधाम, ज्योतीरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, त्रिलोकीके नेत्ररूप, जगन्नाथ, पापनाशक, तपस्याओंके फलदाता, पापियोंको सदा दु:खदायी, कर्मानुरूप फल प्रदान करनेवाले, कर्मके बीजस्वरूप, दयासागर, कर्मरूप, क्रियारूप, रूपरहित, कर्मबीज, ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अंशरूप, त्रिगुणात्मक, व्याधिदाता, व्याधिहन्ता, शोक-मोह-भयके विनाशक, सुखदायक, मोक्षदाता, साररूप, भक्तिप्रद, सम्पूर्ण कामनाओंके दाता, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी, समस्त लोकोंके दृष्टिगोचर, अप्रत्यक्ष, मनोहर, निरन्तर रसको हरनेवाले, तत्पश्चात् रसदाता, सर्वसिद्धिप्रद, सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश और सिद्धोंके परम गुरु हैं, उन आपकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ। वत्स! मैंने इस स्तवराजका वर्णन कर दिया। यह गोपनीयसे भी परम गोपनीय है।* जो नित्य

---

* ब्रह्मोवाच—

त्वं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम्॥

तीनों काल इसका पाठ करता है, वह समस्त व्याधियोंसे मुक्त हो जाता है। उसके अंधापन, कोढ़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह—ये सभी विश्वेश्वर श्रीसूर्यकी कृपासे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो भयंकर कुष्ठसे दुःखी, गलित अङ्गोंवाला, नेत्रहीन, बड़े-बड़े घावोंसे युक्त, यक्ष्मासे ग्रस्त, महान् शूलरोगसे पीड़ित अथवा नाना प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त हो, वह भी यदि एक मासतक हविष्यान्न भोजन करके इस स्तोत्रका श्रवण करे तो निश्चय ही रोगमुक्त हो जाता है और उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अतः पुत्रो! तुमलोग शीघ्र ही पुष्करमें जाओ और वहाँ सूर्यका भजन करो। यों कहकर ब्रह्मा आनन्दपूर्वक अपने भवनको चले गये। इधर वे दोनों दैत्य सूर्यकी सेवा करके नीरोग हो गये। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूछे हुए विघ्नेश्वरके विघ्नका कारण तथा सर्वविघ्नहर सूर्यकवच और सूर्यस्तवादि सुना दिये। अब तुम्हारी और क्या सुननेकी इच्छा है? (अध्याय १९)

भगवान् नारायणके निवेदित पुष्पकी अवहेलनासे इन्द्रका श्रीभ्रष्ट होना, पुनः बृहस्पतिके साथ ब्रह्माके पास जाना, ब्रह्माद्वारा दिये गये नारायणस्तोत्र, कवच और मन्त्रके जपसे पुनः श्री प्राप्त करना

तब श्रीनारायणने कहा—नारद! एक बार देवराज इन्द्र निर्जन वनमें, एक पुष्पोद्यानमें गये थे। वहाँ रम्भा अप्सरासे उनका समागम हुआ। तदनन्तर वे दोनों जलविहार करने लगे। इसी बीच मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा वैकुण्ठसे कैलास जाते हुए शिष्यमण्डलीसहित वहाँ आ पहुँचे। देवराज इन्द्रने उन्हें प्रणाम किया। मुनिने आशीर्वाद दिया। फिर भगवान् नारायणका दिया हुआ पारिजात-पुष्प इन्द्रको देकर मुनिने कहा—'देवराज! भगवान् नारायणके निवेदित यह पुष्प सब विघ्नोंका नाश करनेवाला है। यह जिसके मस्तकपर रहेगा, वह सर्वत्र विजय प्राप्त करेगा और देवताओंमें अग्रगण्य होकर अग्रपूजाका अधिकारी होगा। महालक्ष्मी छायाकी तरह सदा उसके साथ रहेगी। वह ज्ञान, तेज, बुद्धि, बल—सभी बातोंमें सब देवताओंसे श्रेष्ठ और भगवान् हरिके तुल्य पराक्रमी होगा। परंतु जो पामर अहंकारवश भगवान् श्रीहरिके निवेदित इस पुष्पको मस्तकपर धारण नहीं करेगा, वह अपनी जातिवालोंके सहित श्रीभ्रष्ट हो जायगा।' इतना कहकर दुर्वासाजी शंकरालयको चले गये। इन्द्रने उस पुष्पको अपने सिरपर न धारण करके ऐरावत हाथीके मस्तकपर रख दिया। इससे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हो गये। इन्द्रको श्रीभ्रष्ट देख रम्भा उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गयी। गजराज इन्द्रको नीचे गिराकर महान् अरण्यमें चला गया और हथिनीके साथ

त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापप्रमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम्॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्। व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम्।
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम्॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्।
प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षमनूहकम्॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद् रसदं सर्वसिद्धिदम्।
सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम्।
स्तवराजमिति प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्॥ (गणपतिखण्ड १९। ३६—४२)

विहार करने लगा। उस वनमें उसके बहुत-से बच्चे हुए। इसी समय श्रीहरिने उस हाथीका मस्तक काटकर बालक (गणेश)-के सिरपर लगा दिया। वत्स! गजमुखके लगानेका प्रसङ्ग तुमको सुना दिया। इसके श्रवणसे पाप नष्ट होते हैं। अब और क्या सुनना चाहते हो, सो कहो।

नारदने पूछा—प्रभो! किस ब्रह्मशापके कारण वे सभी देवता श्रीभ्रष्ट हो गये थे। पुनः किस प्रकार उन्होंने उन जगज्जननी कमलाको प्राप्त किया? उस समय महेन्द्रने क्या किया? आप उस परम दुर्लभ गोपनीय रहस्यको बतलानेकी कृपा करें।

नारायणने कहा—नारद! जिसकी बुद्धि अत्यन्त मन्द हो गयी थी, श्रीसे भ्रष्ट होनेके कारण जिसपर दीनता छायी हुई थी और जिसका आनन्द नष्ट हो गया था, वह इन्द्र गजेन्द्र और रम्भासे पराभूत होकर अमरावतीमें गया। मुने! वहाँ उसने देखा कि उस पुरीमें आनन्दका नामनिशान नहीं है। वह दीनतासे ग्रस्त, बन्धुओंसे हीन और शत्रुवर्गोंसे खचाखच भर गयी है। तब दूतके मुखसे सारा वृत्तान्त सुनकर वह गुरु बृहस्पतिके घर गया और फिर गुरु तथा देवगणोंके साथ वह ब्रह्माकी सभामें जा पहुँचा। वहाँ जाकर देवताओंसहित इन्द्रने तथा बृहस्पतिने ब्रह्माको नमस्कार किया और भक्तिभावसहित वेदविधिके अनुसार स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् बृहस्पतिने प्रजापति ब्रह्मासे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्माने नीचे मुख करके कहना आरम्भ किया।

ब्रह्मा बोले—देवेन्द्र! तुम मेरे प्रपौत्र हो और श्रीसम्पन्न होनेसे सदा प्रज्वलित होते रहते हो। किंतु राजन्! लक्ष्मीके समान सुन्दरी शचीके पति होनेपर भी तुम आचरणभ्रष्ट हो जाते हो। जो आचरणभ्रष्ट होता है, उसे लक्ष्मी अथवा यशकी प्राप्ति कहाँसे हो सकती है? वह पापी तो सदा सभी सभाओंमें निन्दाका विषय बना रहता है। रम्भाने तुम्हें हतबुद्धि बना दिया था। इसी कारण तुमने दुर्वासाद्वारा दिये गये श्रीहरिके नैवेद्यको गजराजके मस्तकपर डाल दिया। इस समय सबके द्वारा भोगी जानेवाली वह रम्भा कहाँ है और श्रीसे भ्रष्ट हुए तुम कहाँ ? जिसके कारण तुम्हें लक्ष्मीसे रहित होना पड़ा, वह रम्भा भी तुम्हें क्षणभरमें ही त्यागकर चली गयी; क्योंकि वेश्या चञ्चला होती है। वह धनवानोंको ही पसंद करती है, निर्धनोंको नहीं तथा प्राचीन प्रेमीका तिरस्कार करके नये-नये नायकोंको खोजती रहती है। परंतु वत्स! जो बीत गया, वह तो चला ही गया; क्योंकि बीता हुआ पुनः वापस नहीं आता। अब तुम लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक नारायणका भजन करो।

इतना कहकर नारायणपरायण ब्रह्माने इन्द्रको जगत्स्रष्टा नारायणका स्तोत्र, कवच और मन्त्र दिया। तब इन्द्र देवताओं तथा गुरुके साथ पुष्करमें जाकर अपने अभीप्सित मन्त्रका जप करने लगे और कवच ग्रहण करके उसके द्वारा श्रीहरिकी स्तुतिमें तत्पर हो गये। इस प्रकार

पुण्यदायक शुभ भारतवर्षमें एक वर्षतक निराहार रहकर लक्ष्मीकी प्राप्तिके हेतु उन्होंने लक्ष्मीपतिकी सेवा की। तब श्रीहरिने प्रकट होकर इन्द्रको मनोवाञ्छित वर तथा लक्ष्मीका स्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्धक मन्त्र प्रदान किया। मुने! यह सब देकर श्रीहरि तो वैकुण्ठको चले गये और इन्द्र क्षीरसागरपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने कवच धारणकर स्तोत्रद्वारा स्तवन करके लक्ष्मीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने शत्रुको जीतकर अमरावतीको अपने अधिकारमें कर लिया। इसी प्रकार सभी देवता एक-एक करके अपने इच्छित स्थानको प्राप्त हुए। (अध्याय २०-२१)

श्रीहरिका इन्द्रको लक्ष्मी-कवच तथा लक्ष्मी-स्तोत्र प्रदान करना

नारदजीने पूछा—तपोधन! लक्ष्मीपति श्रीहरिने प्रकट होकर इन्द्रको महालक्ष्मीका कौन-सा स्तोत्र और कवच प्रदान किया था, वह मुझे बतलाइये।

नारायणने कहा—नारद! जब पुष्करमें तपस्या करके देवराज इन्द्र शान्त हुए, तब उनके क्लेशको देखकर स्वयं श्रीहरि वहीं प्रकट हुए। उन हृषीकेशने इन्द्रसे कहा—'तुम अपने इच्छानुसार वर माँग लो।' तब इन्द्रने लक्ष्मीको ही वररूपसे वरण किया और श्रीहरिने हर्षपूर्वक उन्हें दे दिया। वर देनेके पश्चात् हृषीकेशने जो हितकारक, सत्य, साररूप और परिणाममें सुखदायक था, ऐसा वचन कहना आरम्भ किया।

श्रीमधुसूदन बोले—इन्द्र! (लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये) तुम लक्ष्मी-कवच ग्रहण करो। यह समस्त दुःखोंका विनाशक, परम ऐश्वर्यका उत्पादक और सम्पूर्ण शत्रुओंका मर्दन करनेवाला है। पूर्वकालमें जब सारा संसार जलमग्न हो गया था, उस समय मैंने इसे ब्रह्माको दिया था। जिसे धारण करके ब्रह्मा त्रिलोकीमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो गये थे। इसीके धारणसे सभी मनुलोग सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके भागी हुए थे। देवराज! इस सर्वैश्वर्यप्रद कवचके ब्रह्मा ऋषि हैं, पङ्क्ति छन्द है, स्वयं पद्मालया लक्ष्मी देवी हैं और सिद्धैश्वर्यके जपोंमें इसका विनियोग कहा गया है। इस कवचके धारण करनेसे लोग सर्वत्र विजयी होते हैं। पद्मा मेरे मस्तककी रक्षा करें। हरिप्रिया कण्ठकी रक्षा करें। लक्ष्मी नासिकाकी रक्षा करें। कमला नेत्रकी रक्षा करें। केशवकान्ता केशोंकी, कमलालया कपालकी, जगज्जननी दोनों कपोलोंकी और सम्पत्प्रदा सदा स्कन्धकी रक्षा करें। '**ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा**' मेरे पृष्ठभागका सदा पालन करे! '**ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा**' वक्षःस्थलको सदा सुरक्षित रखे। श्री देवीको नमस्कार है, वे मेरे कङ्काल तथा दोनों भुजाओंको बचावें। '**ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः**' चिरकालतक निरन्तर मेरे पैरोंका पालन करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा**' नितम्बभागकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा**' मेरे सर्वाङ्गकी सदा रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा**' सब ओरसे सदा मेरा पालन करे। वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे इस सर्वैश्वर्यप्रद नामक परमोत्कृष्ट कवचका वर्णन कर दिया। यह परम अद्भुत कवच सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरुकी अर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह सबको जीतनेवाला हो जाता है। महालक्ष्मी कभी उसके घरका त्याग नहीं करतीं; बल्कि प्रत्येक जन्ममें छायाकी भाँति सदा उसके साथ लगी रहती हैं। जो मन्दबुद्धि इस कवचको बिना जाने ही लक्ष्मीकी भक्ति करता है, उसे एक करोड़ जप

करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता*।

नारायण कहते हैं—महामुने! यों जगदीश्वर श्रीहरिने प्रसन्न हो इन्द्रको यह कवच देनेके पश्चात् पुनः जगत्की हित-कामनासे कृपापूर्वक उन्हें '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा**' यह षोडशाक्षर-मन्त्र भी प्रदान किया। फिर जो गोपनीय, परम दुर्लभ, सिद्धों और मुनिवरोंद्वारा दुष्प्राप्य और निश्चितरूपसे सिद्धिप्रद है, वह सामवेदोक्त शुभ ध्यान भी बतलाया। (वह ध्यान इस प्रकार है—) जिनके शरीरकी आभा श्वेत चम्पाके पुष्पके सदृश तथा कान्ति सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान है, जो अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई साड़ीको धारण किये हुए तथा रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके प्रसन्न मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी हुई है, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली, स्वस्थ और अत्यन्त मनोहर हैं, सहस्रदल-कमल जिनका आसन है, जो परम शान्त तथा श्रीहरिकी प्रियतमा पत्नी हैं, उन जगज्जननीका भजन करना चाहिये। देवेन्द्र! इस प्रकारके ध्यानसे जब तुम मनोहारिणी लक्ष्मीका ध्यान करके भक्तिपूर्वक उन्हें षोडशोपचार समर्पित करोगे और आगे कहे जानेवाले स्तोत्रसे उनकी स्तुति करके सिर झुकाओगे, तब उनसे वरदान पाकर तुम दुःखसे मुक्त हो जाओगे। देवराज! महालक्ष्मीका वह सुखप्रद स्तोत्र, जो परम गोपनीय तथा त्रिलोकीमें दुर्लभ है, बतलाता हूँ। सुनो।

नारायण कहते हैं—देवि! जिनका स्तवन करनेमें बड़े-बड़े देवेश्वर समर्थ नहीं हैं, उन्हीं आपकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ। आप बुद्धिके परे, सूक्ष्म, तेजोरूपा, सनातनी और अत्यन्त अनिर्वचनीया हैं। फिर आपका वर्णन कौन कर सकता है? जगदम्बिके! आप स्वेच्छामयी, निराकार, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रहस्वरूप और मन-वाणीसे परे हैं; तब मैं आपकी क्या स्तुति करूँ। आप चारों वेदोंसे परे, भवसागरको पार करनेके लिये उपायस्वरूप, सम्पूर्ण अन्नों तथा सारी सम्पदाओंकी अधिदेवी हैं और योगियों-योगों, ज्ञानियों-ज्ञानों, वेदों-वेदवेत्ताओंकी जननी हैं; फिर मैं आपका क्या वर्णन कर सकता हूँ! जिनके बिना सारा जगत् निश्चय ही उसी प्रकार

---

*श्रीमधुसूदन उवाच—

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम् । परमैश्वर्यजनकं. सर्वशत्रुविमर्दनम्॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते । यद् धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः॥
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः । सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया सुर । सिद्धैश्वर्यजयेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः॥
यद् धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत्॥
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया । नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम्॥
केशान् केशवकान्ता च कपालं कमलालया। जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं सम्पत्प्रदा सदा॥
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदावतु। ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदावतु॥
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च ते नमः॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे सततं चिरम्। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥
ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसम्पत्करं परम् । सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्॥
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन । तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

(गणपतिखण्ड २२। ५—१९)

वस्तुहीन एवं निष्फल हो जाता है, जैसे दूध पीनेवाले बच्चोंको माताके बिना सुख नहीं मिलता। आप तो जगत्की माता हैं; अतः प्रसन्न हो जाइये और हम अत्यन्त भयभीतोंकी रक्षा कीजिये। हमलोग आपके चरणकमलका आश्रय लेकर शरणापन्न हुए हैं। आप शक्तिस्वरूपा जगज्जननीको बारंबार नमस्कार है। ज्ञान, बुद्धि तथा सर्वस्व प्रदान करनेवाली आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। महालक्ष्मी! आप हरि-भक्ति प्रदान करनेवाली, मुक्तिदायिनी, सर्वज्ञा और सब कुछ देनेवाली हैं। आप बारंबार मेरा प्रणिपात स्वीकार करें। माँ! कुपुत्र तो कहीं-कहीं होते हैं, परंतु कुमाता कहीं नहीं होती। क्या कहीं पुत्रके दुष्ट होनेपर माता उसे छोड़कर चली जाती है? हे मातः! आप कृपासिन्धु श्रीहरिकी प्राणप्रिया हैं और भक्तोंपर अनुग्रह करना आपका स्वभाव है; अतः दुधमुँहे बालकोंकी तरह हमलोगोंपर कृपा करो, हमें दर्शन दो। वत्स! इस प्रकार लक्ष्मीका वह शुभकारक स्तोत्र, जो सुखदायक, मोक्षप्रद, साररूप, शुभद और सम्पत्तिका आश्रयस्थान है, तुम्हें बता दिया। जो मनुष्य पूजाके समय इस महान् पुण्यकारक स्तोत्रका पाठ करता है, उसके गृहका महालक्ष्मी कभी परित्याग नहीं करतीं। इन्द्रसे इतना कहकर श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये। तब उनकी आज्ञासे देवताओंके साथ देवराज क्षीरसागरपर गये*। (अध्याय २२)

देवताओंके स्तवन करनेपर महालक्ष्मीका प्रकट होकर देवों और मुनियोंके समक्ष अपने निवास-योग्य स्थानका वर्णन करना

नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर इन्द्र गुरु बृहस्पति तथा अन्यान्य देवोंको साथ लेकर लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये प्रसन्न-मनसे शीघ्र ही क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने अमूल्य रत्नकी गुटिकासे युक्त कवचको गलेमें बाँधकर पुनः-पुनः उस दिव्य स्तोत्रका मन-ही-मन स्मरण

---

* नारायण उवाच—

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न क्षमाः स्तोतुमीश्वराः। बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम्॥
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः। स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम्॥
स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किं वाहं जगदम्बिके। परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे॥
सर्वशस्याधिदेवीं च सर्वासामपि सम्पदाम्।
योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा। वेदानां च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम्॥
यया विना जगत् सर्वमवस्तु निष्फलं ध्रुवम्। यथा स्तनान्धबालानां विना मात्रासुखं भवेत्॥
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान्। वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः॥
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः। ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः॥
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः। सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः॥
कुपुत्राः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित् कुमातरः। कुत्र माता पुत्रदोषे तं विहाय च गच्छति॥
हे मातर्दर्शनं देहि स्तनान्धान् बालकानिव। कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान् भक्तवत्सले॥
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम्। सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत्। महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत। देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया॥

(गणपतिखण्ड २२। २७—३९)

किया। फिर सब लोगोंने भक्तिभावपूर्वक कमल-वासिनी लक्ष्मीका स्तवन किया। उस समय उनके सिर भक्तिके कारण झुके हुए थे और अत्यन्त दीनतावश नेत्रोंमें आँसू छलक आये थे। उनके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर सहस्रदल-कमलपर वास करनेवाली तथा सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती महालक्ष्मी तुरंत ही वहाँ प्रकट हो गयीं। मुने! उन जगन्माताकी उत्तम प्रभासे सारा जगत् व्याप्त हो गया। तदनन्तर जगत्का धारण-पोषण करनेवाली लक्ष्मीने देवताओंसे यथोचित हितकारक एवं साररूप वचन कहा।

श्रीमहालक्ष्मी बोलीं—बच्चो! तुमलोग ब्रह्मशापके कारण भ्रष्ट हो गये हो, अत: मेरा तुमलोगोंके घर जानेका विचार नहीं है। इस समय मैं ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हूँ; क्योंकि मैं ब्रह्मशापसे डर रही हूँ। ब्राह्मण मेरे प्राण हैं। वे सभी सदा मुझे पुत्रसे भी बढ़कर प्रिय हैं। वे ब्राह्मण जो कुछ देते हैं, वही मेरी जीविकाका साधन होता है। यदि वे विप्र प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहें तो मैं उनकी आज्ञासे चल सकूँगी। वे तपस्वी मेरी पूजा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जब अभाग्यका समय आ जाता है, तभी वे गुरु, ब्राह्मण, देव, संन्यासी तथा वैष्णवोंद्वारा शापित होते हैं। जो सबके कारण, ऐश्वर्यशाली, सर्वेश्वर और सनातन हैं, वे भगवान् नारायण भी ब्रह्मशापसे भय मानते हैं।

ब्रह्मन्! इसी बीच अङ्गिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, कश्यप, अगस्त्य, गौतम, कण्व, और्व, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, मार्कण्डेय, लोमश और स्वयं भगवान् वसिष्ठ—ये सभी ब्राह्मण हर्षपूर्ण-चित्तसे वहाँ आये। वे सभी ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे और उनके मुखोंपर मुस्कराहट थी। उन्होंने अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्रीसे भगवती लक्ष्मीका पूजन किया और देवताओंने उन्हें वन्य पदार्थोंका नैवेद्य समर्पित किया। फिर उन मुनीश्वरोंने हर्षके साथ उनकी स्तुति करके भक्तिपूर्वक उनका आराधन किया और कहा—'जगदम्बिके! आप देवलोक तथा मर्त्यलोकमें पधारिये।' उनका वह वचन सुनकर जगज्जननी संतुष्ट हो गयीं और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे निर्भय हो चलनेके लिये उद्यत होकर उनसे बोलीं।

श्रीमहालक्ष्मीने कहा—विप्रवरो! मैं आपलोगोंकी आज्ञासे देवताओंके घर जाऊँगी, किंतु भारतवर्षमें जिन-जिनके घर नहीं जाऊँगी, उनका विवरण सुनिये। पुण्यात्मा गृहस्थों और उत्तम नीतिके जानकार नरेशोंके घरमें तो मैं स्थिररूपसे निवास करूँगी और पुत्रकी भाँति उनकी रक्षा करूँगी। जिस-जिसके प्रति उसके गुरु, देवता, माता, पिता, भाई-बन्धु, अतिथि और पितर लोग रुष्ट हो जायँगे, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मिथ्यावादी, पराक्रमहीन और दुष्ट स्वभाववाला है तथा 'मेरे पास कुछ नहीं है' यों सदा कहता रहता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो सत्यहीन, धरोहर हड़प लेनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, विश्वासघाती और कृतघ्न है, उसके गृह मैं नहीं जाऊँगी। जो चिन्ताग्रस्त, भयभीत, शत्रुके चंगुलमें फँसा हुआ, महान् पापी, कर्जदार और अत्यन्त कृपण है—ऐसे पापियोंके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो दीक्षाहीन, शोकार्त, मन्दबुद्धि और सदा स्त्रीके वशमें रहनेवाला है तथा जो कुलटा स्त्रीका पति अथवा पुत्र है, उसके घर मैं कभी नहीं जाऊँगी। जो दुष्ट वचन बोलनेवाला और झगड़ालू है, जिसके घरमें निरन्तर कलह होता रहता है तथा जिसके घरमें स्त्रीका स्वामित्व है—ऐसे लोगोंके घर मैं नहीं जाऊँगी। जहाँ श्रीहरिकी पूजा और उनके गुणोंका

कीर्तन नहीं होता तथा उनकी प्रशंसामें उत्सुकता नहीं है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो कन्या, अन्न और वेदको बेचनेवाला, मनुष्यघाती और हिंसक है, उसका घर नरककुण्डके समान है; अत: मैं उसके घर नहीं जाऊँगी। जो कृपणतावश माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी, गुरु, पुत्र, अनाथ बहिन और आश्रयहीन बान्धवोंका पालन-पोषण नहीं करता; सदा धन-संग्रहमें ही लगा रहता है; उसके नरक-कुण्ड-सदृश घरमें मैं नहीं जाऊँगी। जिसके दाँत और वस्त्र मलिन, मस्तक रूखा और ग्रास तथा हास विकृत रहते हैं, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मन्दबुद्धि मल-मूत्रका परित्याग करके उसपर दृष्टि डालता है और गीले पैरों सोता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो बिना पैर धोये सोता है; गाढ़ निद्राके वशीभूत होकर सोते समय नंगा हो जाता है तथा संध्याकाल और दिनमें शयन करनेवाला है; उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो पहले मस्तकपर तेल लगाकर पीछे उस तेलसे अन्य अङ्गोंका स्पर्श करता है अथवा सारे शरीरमें लगाता है उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मस्तक और शरीरमें तेल लगाकर मल-मूत्रका त्याग करता है, नमस्कार करता है और पुष्प तोड़कर ले आता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो नखोंसे तृण तोड़ता और नखोंसे भूमि कुरेदता है तथा जिसके शरीर और पैरमें मैल जमी रहती है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो अपने द्वारा अथवा पराये द्वारा दी हुई ब्राह्मणकी और देवताकी वृत्तिका अपहरण करता है, वह ज्ञानशील ही क्यों न हो, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मूर्ख कर्म करके दक्षिणा नहीं देता, वह शठ पापी और पुण्यहीन है; उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मन्त्रविद्या (झाड़-फूँक)-से जीविका चलानेवाला, ग्रामयाजी (पुरोहित), वैद्य, रसोइया और देवल (वेतन लेकर मूर्ति-पूजा करनेवाला) है; उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो क्रोधवश विवाह अथवा धर्मकार्यको काट देता है तथा जो दिनमें स्त्री-प्रसङ्ग करता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी।

नारद! इतना कहकर महालक्ष्मी अन्तर्धान हो गयीं। फिर उन्होंने देवताओंके गृह तथा मृत्युलोककी ओर देखा। तब सभी देवता और मुनिगण आनन्दपूर्वक महालक्ष्मीको प्रणाम करके शीघ्र ही अपने-अपने वासस्थानको चले गये। उस समय उनके गृहोंको शत्रुओंने छोड़ दिया था और वे सुहृदोंसे परिपूर्ण थे। मुने! फिर तो स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रकार देवताओंने अपना राज्य और स्थिरा लक्ष्मीको प्राप्त किया। वत्स! इस प्रकार मैंने लक्ष्मीके उत्तम चरितका, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और साररूप है, वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय २३)

गणेशके एकदन्त-वर्णन-प्रसङ्गमें जमदग्निके आश्रमपर कार्तवीर्यका स्वागत-सत्कार, कार्तवीर्यका बलपूर्वक कामधेनुको हरण करनेकी इच्छा प्रकट करना, कामधेनुद्वारा उत्पन्न की हुई सेनाके साथ कार्तवीर्यकी सेनाका युद्ध

नारदजीने पूछा—हरिके अंशसे उत्पन्न हुए महाभाग नारायण! आपकी कृपासे मैंने गणेशका सारा शुभ चरित सुन लिया। किंतु ब्रह्मन्! विष्णुने उस बालकके धड़पर गजराजके दो दाँतोंवाले मुखको जोड़ा था; फिर वह शिशु एकदन्त कैसे हो गया? उसका वह दूसरा दाँत कहाँ चला गया? वह प्रसङ्ग बतलानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि आप सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, कृपालु और भक्तवत्सल हैं।

तदनन्तर मन्त्रीके कहनेपर वह दुर्बुद्धि राजा मुनिसे उस गौकी याचना करनेके लिये उद्यत हो गया; क्योंकि वह उस समय सर्वथा कालपाशसे बँधा हुआ था। भला, पुण्य अथवा उत्तम बुद्धि क्या कर सकती है; क्योंकि होनहार ही सब तरहसे बली होता है। इसी कारण पुण्यवान् एवं बुद्धिमान् होकर भी राजेन्द्र कार्तवीर्य दैववश ब्राह्मणसे याचना करना चाहता है। पुण्यसे भारतवर्षमें पुण्यरूप कर्म और पापसे भयदायक पापरूप कर्म प्रकट होता है। पुण्यकर्मसे स्वर्गका भोग करके मनुष्य पुण्यस्थलमें जन्म लेते हैं और पापकर्मसे नरकका भोग करनेके पश्चात् प्राणियोंकी निन्दित योनिमें उत्पत्ति होती है। नारद! कर्मके वर्तमान रहते प्राणियोंका उद्धार नहीं होता; इसलिये संतलोग निरन्तर कर्मका क्षय ही करते रहते हैं। वही विद्या, वही तप, वही ज्ञान, वही गुरु, वही भाई-बन्धु, वही माता, वही पिता और वही पुत्र सार्थक है, जो कर्मक्षयमें सहायता करता है*। प्राणियोंके कर्मोंका शुभ-अशुभ भोग दारुण रोगके समान है, जिसे भक्तरूपी वैद्य श्रीकृष्ण-भक्तिरूपी रसायनके द्वारा नष्ट करते हैं। जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाली बुद्धिदायिनी माया प्रत्येक जन्ममें सेवा किये जानेपर संतुष्ट होकर भक्तको वह भक्ति प्रदान करती है। तदनन्तर मायासे विमुग्ध हुए राजा कार्तवीर्यने यत्नपूर्वक मुनिको अपने पास बुलाया और हर्षके साथ अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उनसे विनयपूर्ण वचन कहा।

राजा बोला—भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत रहनेवाले भक्तेश! आप तो कल्पतरुके समान हैं; अतः मुझ भक्तको कामनापूर्ण करनेवाली इस कामधेनुको भिक्षारूपमें प्रदान कीजिये। तपोधन! आप-जैसे दाताओंके लिये भारतमें कोई वस्तु अदेय नहीं है। मैंने सुना भी है कि पूर्वकालमें दधीचिने देवताओंको अपनी हड्डी दे डाली थी। तपोराशे! आप तो भारतवर्षमें लीलापूर्वक भ्रूभङ्गमात्रसे समूह-की-समूह कामधेनुओंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं।

मुनिने कहा—राजन्! आश्चर्य है, तुम तो उलटी बात कह रहे हो। अरे मूर्ख एवं छली नरेश! मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रियको दान कैसे दूँगा? इस कामधेनुको परमात्मा श्रीकृष्णने गोलोकमें यज्ञके अवसरपर ब्रह्माको दिया था, अतः प्राणोंसे बढ़कर प्यारी यह गौ देने योग्य नहीं है। भूमिपाल! फिर ब्रह्माने इसे अपने प्रिय पुत्र भृगुको दिया और भृगुने मुझे दिया। इस प्रकार यह कपिला मेरी पैतृक सम्पत्ति है। यह कामधेनु गोलोकमें उत्पन्न हुई है; अतः त्रिलोकीमें दुर्लभ है। तब भला मैं लीलापूर्वक ऐसी कपिलाकी सृष्टि करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ। न तो मैं हलवाहा हूँ और न तुम्हारी सहायतासे बुद्धिमान् हुआ हूँ। मैं अतिथिको छोड़कर शेष सबको क्षणमात्रमें भस्मसात् करनेकी शक्ति रखता हूँ। अतः अपने घर जाओ और स्त्री-पुत्रोंको देखो।

मुनिके इस वचनको सुनकर राजाको क्रोध आ गया। तब वह मुनिको नमस्कार करके सेनाके मध्यमें चला गया। उस समय भाग्यने उसे बाधित कर दिया था; अतः क्रोधके कारण उसके होंठ फड़क रहे थे। उसने सेनाके निकट जाकर बलपूर्वक गौको लानेके लिये नौकरोंको भेजा। इधर शोकके कारण, जिनका विवेक नष्ट हो गया था, वे मुनिवर जमदग्नि कपिलाके संनिकट जाकर रोने लगे और उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत रहनेवाली वह गौ, जो साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा थी, ब्राह्मणको रोते देखकर बोली।

* सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः। सा माता स पिता पुत्रस्तत् क्षयं कारयेत् तु यः॥
(गणपतिखण्ड २४। ३५)

सुरभिने कहा—मुने! जो निरन्तर अपनी वस्तुओंका शासक, पालक और दाता है, चाहे वह इन्द्र हो अथवा हलवाहा, वही अपनी वस्तुका दान कर सकता है। तपोधन! यदि आप स्वेच्छानुसार मुझे राजाको देंगे, तभी मैं स्वेच्छासे अथवा आपकी आज्ञासे उसके साथ जाऊँगी। यदि आप नहीं देंगे तो मैं आपके घरसे नहीं जाऊँगी। आप मेरे द्वारा दी गयी सेनाके सहारे राजाको भगा दीजिये। सर्वज्ञ! मायासे विमुग्ध-चित्त होकर आप क्यों रो रहे हैं? अरे! ये संयोग-वियोग तो कालकृत हैं, आत्मकृत नहीं हैं। आप मेरे कौन हैं और मैं आपकी कौन हूँ—यह सम्बन्ध तो कालद्वारा नियोजित है। जबतक यह सम्बन्ध है तभीतक आप मेरे हैं। मन जबतक जिस वस्तुको केवल अपना मानता है और उसपर अपना अधिकार समझता है, तभीतक उसके वियोगसे दुःख होता है।

इतना कहकर कामधेनुने सूर्यके सदृश कान्तिमान् नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र और सेनाएँ उत्पन्न कीं। उस कपिलाके मुख आदि अङ्गोंसे करोड़ों-करोड़ों खड्गधारी, शूलधारी, धनुर्धारी, दण्ड, शक्ति और गदाधारी शूरवीर निकल आये। करोड़ों वीर राजकुमार और म्लेच्छ निकले। इस प्रकार कपिलाने मुनिको सेनाएँ देकर उन्हें निर्भय कर दिया और कहा—'ये सेनाएँ युद्ध करेंगी; आप वहाँ मत जाइये।' उस सामग्रीसे सम्पन्न होनेके कारण मुनिको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। इधर राजाद्वारा भेजे गये भृत्यने लौटकर राजाको सारा वृत्तान्त बतलाया। कपिलाकी सेनाका वृत्तान्त और अपने पक्षकी पराजय सुनकर नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्य भयभीत हो गया। उसके मनमें कातरता छा गयी। तब उसने दूत भेजकर अपने देशसे और सेनाएँ मँगवायीं।

(अध्याय २४)

जमदग्नि और कार्तवीर्यका युद्ध तथा ब्रह्माद्वारा उसका निवारण

नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर कार्तवीर्यने दुःखी हृदयसे श्रीहरिका स्मरण किया और कुपित हो मुनिके पास दूत भेजकर कहलवाया—'मुनिश्रेष्ठ! युद्ध कीजिये अथवा मुझ अतिथि एवं भृत्यको मेरी वाञ्छित गौ दीजिये। भलीभाँति विचार करके जो उचित समझिये वही कीजिये।' दूतकी यह बात सुनकर मुनिवर जमदग्नि ठहाका मारकर हँस पड़े और जो हितकारक, सत्य, नीतिका सार-तत्त्व था, वह सब दूतसे कहने लगे।

मुनि बोले—दूत! राजाको आहाररहित देखकर मैं उसे अपने घर ले आया और यथोचितरूपसे शक्तिके अनुसार अनेक प्रकारके व्यञ्जन भोजन कराये। अब वह राजा मेरी प्राणोंसे प्यारी कपिलाको बलपूर्वक माँग रहा है। मैं उसे देनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ; अतः युद्ध-दान दूँगा—यह निश्चित है। मुनिका वह वचन सुनकर दूत लौट गया और सभाके मध्यभागमें भयके कारण कवच धारण करके बैठे हुए नरेशसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

इधर मुनिने कपिलासे कहा—'इस समय मैं क्या करूँ; क्योंकि जैसे कर्णधारके बिना नौका अनियन्त्रित रहती है, वही दशा मेरे बिना इस सेनाकी हो रही है।' तब कपिलाने मुनिको अनेक प्रकारके शस्त्र, युद्धशास्त्रकी शिक्षा और उसके उपयोगमें आनेवाले संधान आदिका ज्ञान प्रदान करते हुए कहा—'विप्रवर! आपकी जय हो। आप युद्धमें निश्चय ही शत्रुको जीत लेंगे तथा यह भी ध्रुव है कि अमोघ दिव्यास्त्रके बिना आपकी मृत्यु नहीं होगी। आप ब्राह्मण हैं; अतः आपका दत्तात्रेयके शिष्य एवं अमोघ शक्तिधारी

राजाके साथ युद्ध होना युक्त नहीं है।' ब्रह्मन्! इतना कहकर मनस्विनी कपिला चुप हो गयी। तब मनस्वी मुनिने सेनाको सुसज्जित किया और उस सारी सेनाको साथ लेकर वे युद्धस्थलको प्रस्थित हुए। उधर राजा भी युद्धके लिये आ डटा। उसने मुनिवर जमदग्निको प्रणाम किया। फिर दोनों सेनाओंमें अत्यन्त दुष्कर युद्ध होने लगा। उस युद्धमें कपिलाकी सेनाने बलपूर्वक राजाकी सारी सेनाको जीत लिया और खेल-ही-खेलमें राजाके विचित्र रथको चूर-चूर कर दिया। फिर हँसते-हँसते राजाके कवच और धनुषको भी छिन्न-भिन्न कर डाला। इस प्रकार राजा कार्तवीर्य कपिलाकी सेनाको जीतनेमें असमर्थ हो गया। उन सेनाओंने शस्त्रोंकी वर्षासे राजाको हथियार रख देनेके लिये विवश कर दिया। तत्पश्चात् बाणों तथा शस्त्रोंकी वर्षासे राजा मूर्च्छित हो गया। उस समय राजाकी कुछ सेना तो मर चुकी थी और कुछ भाग खड़ी हुई। मुने! जब कृपासागर मुनिवर जमदग्निने देखा कि मेरा अतिथि बना हुआ राजराजेश्वर कार्तवीर्य मूर्च्छित हो गया है, तब कृपापरवश हो उन्होंने उस सेनाको लौटा लिया। फिर तो वह कृत्रिम सेना जाकर कपिलाके शरीरमें विलीन हो गयी। तदनन्तर कृपालु मुनिने शीघ्र ही राजाको अपनी चरण-धूलि देकर 'तुम्हारी जय हो' ऐसा शुभाशीर्वाद प्रदान किया और अपने कमण्डलुके जलके छींटे देकर उसे चैतन्य कराया। होशमें आनेपर वह राजा युद्धभूमिमें उठकर खड़ा हो गया और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े हुए उसने मुनिवरको सिर झुकाकर प्रणाम किया। तब मुनिने राजाको शुभाशीष देकर हृदयसे लगा लिया और पुन: उसे स्नान कराकर यत्नपूर्वक भोजन कराया; क्योंकि ब्राह्मणोंका हृदय सदा मक्खनके समान कोमल होता है; परंतु दूसरोंका हृदय सदा छुरेकी धारके सदृश तेज, असाध्य और दारुण होता है। तत्पश्चात् मुनिवरने राजासे कहा—'नरेश! अब तुम अपने घर लौट जाओ।'

तब राजाने कहा—महाबाहो! युद्ध कीजिये अथवा मेरी अभीष्ट गौ मुझे समर्पित कीजिये।

नारायण कहते हैं—नारद! भूपालके वचनको सुनकर मुनिवरने श्रीहरिका स्मरण करके जो हितकर, सत्य और नीतिका साररूप था, ऐसा वचन कहना आरम्भ किया।

मुनिने कहा—महाभाग! अपने घर जाओ और सनातनधर्मकी रक्षा करो; क्योंकि धर्मके सुरक्षित रहनेपर सारी सम्पत्तियाँ सदा स्थिररूपसे निवास करती हैं—यह पूर्णतया निश्चित है। राजन्! तुम्हें भोजनसे वञ्चित देखकर मैं अपने घर लाया और विधिपूर्वक यथाशक्ति तुम्हारा आदर-सत्कार किया। इस समय तुम्हें मूर्च्छित देखकर मैंने चरणधूलि और शुभाशीर्वाद दिया, जिससे तुम्हारी मूर्च्छा दूर हुई; अत: तुम्हारा ऐसा कहना उचित नहीं है।

उस वचनको सुनकर राजाने मुनिवरको प्रणाम किया और एक-दूसरे रथपर सवार हो 'युद्ध दीजिये'—ऐसे ललकारा। तब मुनि भी

कवच धारण करके उससे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये। क्रोधके कारण राजाकी बुद्धि मारी गयी थी; अतः वह मुनिके साथ जूझने लगा। मुनिने कपिलाद्वारा दी गयी शक्ति और शस्त्रके बलसे राजाको शस्त्रहीन करके मूर्च्छित कर दिया। तब कमललोचन राजा कार्तवीर्य पुनः होशमें आकर क्रोधपूर्वक मुनिके साथ लोहा लेने लगा। उस नृपश्रेष्ठने समरभूमिमें आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, तब मुनिने वारुणास्त्रद्वारा उसे हँसते-हँसते शान्त कर दिया। फिर राजाने रणभूमिमें मुनिके ऊपर वारुणास्त्र फेंका, तब मुनिने लीलापूर्वक वायव्यास्त्रद्वारा उसे शान्त कर दिया। तब राजाने युद्धस्थलमें वायव्यास्त्र चलाया; मुनिने उसे उसी क्षण गान्धर्वास्त्रद्वारा निवारण कर दिया। फिर नरेशने रणके मुहानेपर नागास्त्र छोड़ा, मुनिवरने उसे हर्षपूर्वक तत्काल ही गारुड़ास्त्रद्वारा प्रतिहत कर दिया। तब नृपवरने, जो सैकड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् एवं दसों दिशाओंको उद्दीप्त करनेवाला था, उस माहेश्वर नामक महान् अस्त्रका प्रयोग किया। नारद! तब मुनिने बड़े यत्नके साथ त्रिलोकव्यापी दिव्य वैष्णवास्त्रद्वारा उसका निवारण कर दिया और फिर यत्नपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उस अस्त्रको देखकर महाराज कार्तवीर्य उसे नमस्कार करके शरणागत हो गया। तब प्रलयाग्निके समान वह अस्त्र वहाँ ऊपर-ही-ऊपर घूमकर क्षणभरतक दसों दिशाओंको प्रकाशित करके स्वयं अन्तर्धान हो गया। फिर मुनिने रणके मुहानेपर जृम्भणास्त्र छोड़ा। उस अस्त्रके प्रभावसे राजाको निद्राने आ घेरा और वह मृतक-तुल्य होकर सो गया। तब राजाको निद्रित देखकर मुनिने उसी क्षण अर्धचन्द्रद्वारा उस भूपालके सारथि, रथ और धनुषबाणको छिन्न-भिन्न कर दिया। क्षुरप्रसे मुकुट, छत्र और कवच काट डाला तथा भाँति-भाँतिके अस्त्र-प्रयोगसे उसके अस्त्र, तरकस और घोड़ोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं। फिर युद्धस्थलमें हँसते हुए मुनिने खेल-ही-खेलमें नागास्त्रद्वारा राजाके सभी मन्त्रियोंको बाँधकर कैद कर लिया; फिर लीलापूर्वक उत्तम मन्त्रका प्रयोग करके उस राजाको जगाया और उन बँधे हुए सभी मन्त्रियोंको उसे दिखाया। राजाको दिखाकर मुनिने तत्काल ही उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया और नरेशको आशीर्वाद देकर कहा—'राजन्! अब अपने घर जाओ।' परंतु राजा क्रोधसे भरा हुआ था। उसने उठकर त्रिशूल उठा लिया और यत्नपूर्वक उसे मुनिवर जमदग्निपर चला दिया। तब मुनिने उसपर शक्तिसे प्रहार किया। इसी बीच उस युद्धस्थलमें ब्रह्माने आकर उत्तम नीतिद्वारा उन दोनोंमें परस्पर प्रेम स्थापित करा दिया। तब मुनिने संतुष्ट होकर रणक्षेत्रमें ब्रह्माके चरणोंमें प्रणिपात किया और राजा ब्रह्मा तथा मुनिको नमस्कार करके अपने घरको प्रस्थान कर गया। फिर मुनि और ब्रह्मा अपने-अपने भवनको चले गये। इस प्रकार इसका वर्णन तो कर दिया, अब आगे तुमसे कुछ और कहूँगा। (अध्याय २५-२६)

जमदग्नि-कार्तवीर्य-युद्ध, कार्तवीर्यद्वारा दत्तात्रेयदत्त शक्तिके प्रहारसे जमदग्निका वध, रेणुकाका विलाप, परशुरामका आना और क्षत्रियवधकी प्रतिज्ञा करना, भृगुका आकर उन्हें सान्त्वना देना

नारायण कहते हैं—नारद! राजा घर लौट तो गया पर उसके मनमें युद्धकी लगी रही; इससे उसने लाखों सेना संग्रह करके फिर जमदग्निके आश्रमपर जाकर आश्रमको घेर लिया। राजाकी विशाल सेनाको देखकर जमदग्निके आश्रमवासी भयसे मूर्च्छित हो गये। महर्षिने मन्त्रोच्चारणपूर्वक

बाणोंका एक ऐसा जाल बिछाया कि उससे आश्रमभूमि पूरी ढक गयी। सारी सेना उसीमें आबद्ध हो गयी। तब राजाने रथसे उतरकर महर्षिको नमस्कार किया। महर्षिने उसे आशीर्वाद दिया। राजाने फिर आक्रमण किया। यों कई बार राजा आक्रमण करता रहा, मूर्च्छित होता रहा, पर क्षमाशील मुनिने उसका वध नहीं किया। बड़ा घोर युद्ध हुआ। अन्तमें राजा कार्तवीर्यने दत्तात्रेय मुनिके द्वारा प्राप्त एक पुरुषका नाश करनेवाली अमोघ शक्तिका प्रयोग किया। वह भगवान् विष्णुकी शक्ति थी। उसने मुनिके हृदयको बींध डाला। मुनिने उसके आघातसे जीवनविसर्जन कर दिया। शक्ति भगवान् विष्णुके पास चली गयी।

जगत्‌में हाहाकार मच गया। कपिला गौ 'तात-तात' पुकारती हुई गोलोकको प्रस्थान कर गयी। तदनन्तर राजा कार्तवीर्यार्जुन ब्रह्महत्या-जनित पापका प्रायश्चित्त करके अपनी राजधानीको लौट गया।

इधर पतिव्रता महर्षिपत्नी रेणुका पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगीं। वे अपने पुत्र परशुरामको पुकारने लगीं। उस समय योगी परशुराम पुष्करमें थे। वे उसी क्षण मानस-गतिसे

चलकर माताके पास आ पहुँचे। उन्होंने माताको प्रणाम किया और पिताकी अन्त्येष्टि-क्रियाकी तैयारी की। सारी बातें सुनकर माताके युद्ध न करनेका अनुरोध करनेपर भी भार्गव परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन करनेकी प्रतिज्ञा कर ली और राजा कार्तवीर्यार्जुनके वध करनेका प्रण कर लिया। फिर विलाप करती हुई पति-शोकपीड़िता माताको समझाते हुए बोले!

परशुरामने कहा—माता! जो पिताकी आज्ञा भङ्ग करनेवाले तथा पिताके हिंसकका वध नहीं करता, वह महान् मूर्ख है। उसे निश्चय ही रौरव नरकमें जाना पड़ता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, हाथमें हथियार लेकर मारनेके लिये आनेवाला, धनका अपहरण करनेवाला, क्षेत्रका विनाश करनेवाला, स्त्रीको चुरानेवाला, पिताका वध करनेवाला, बन्धुओंकी हिंसा करनेवाला, सदा अपकार करनेवाला, निन्दक और कटु वचन कहनेवाला—ये ग्यारह वेदविहित घोर पापी हैं। ये मार डालने योग्य हैं।

इसी बीच वहाँ स्वयं महर्षि भृगु आ पहुँचे। वे मनस्वी मुनि अत्यन्त भयभीत थे और उनका हृदय दुःखी था। उन्हें देखकर रेणुका और परशुराम उनके चरणोंपर गिर पड़े। तब भृगुमुनि उन दोनोंसे ऐसी वेदोक्त बात कहने लगे जो परलोकके लिये हितकारिणी थी।

भृगुजी बोले—बेटा! तुम तो मेरे वंशमें उत्पन्न और ज्ञानसम्पन्न हो; फिर विलाप कैसे कर रहे हो। इस संसारमें सभी चराचर प्राणी जलके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर हैं। पुत्र! सत्यके सार तथा सत्यके बीज तो श्रीकृष्ण ही हैं। तुम उन्हींका स्मरण करो। वत्स! जो बीत गया, सो गया; क्योंकि बीती हुई बात पुनः लौटती नहीं। जो होनेवाला है, वह होता ही है और आगे भी जो होनेवाला होगा वह होकर ही रहेगा; क्योंकि

निषेकजन्य (प्रारब्धजन्य) कर्म सत्य (अटल) होता है। भला, कर्मफलभोगको कौन हटा सकता है? वत्स! श्रीकृष्णने जिस प्रकारके भूत, वर्तमान और भविष्यकी रचना की है, उनके द्वारा निरूपित उस कर्मको कौन निवारण कर सकता है? बेटा! मायाका कारण, मायावियोंके पाञ्चभौतिक शरीर और संकेतपूर्वक नाम—ये प्रात:कालके स्वप्नसदृश निरर्थक हैं। परमात्माके अंशभूत आत्माके चले जानेपर भूख, निद्रा, दया, शान्ति, क्षमा, कान्ति, प्राण, मन तथा ज्ञान सभी चले जाते हैं। जैसे राजाधिराजके पीछे नौकर-चाकर चलते हैं, उसी प्रकार बुद्धि तथा सारी शक्तियाँ उसीका अनुगमन करती हैं; अत: तुम यत्नपूर्वक श्रीकृष्णका भजन करो। बेटा! कौन किसके पितर हैं और कौन किसके पुत्र हैं। ये सभी इस दुस्तर भवसागरमें कर्मरूपी लहरियोंसे प्रेरित हो रहे हैं। पुत्र! ज्ञानीलोग विलाप नहीं करते, अत: अब तुम भी रुदन मत करो; क्योंकि रोनेके कारण आँसुओंके गिरनेसे मृतकोंको निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है।* भाई-बन्धु आदि कुटुम्बके लोग जिस सांकेतिक नामका उच्चारण करके रुदन करते हैं, उसे वे सौ वर्षोंतक रोते रहनेपर भी नहीं पा सकते—यह निश्चित है; क्योंकि त्वचा आदि पृथ्वीके अंशको पृथ्वी, जलांशको जल, शून्यांशको आकाश, वायुके अंशको वायु तथा तेजांशको तेज ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार सभी अंश अपने-अपने अंशीमें विलीन हो जाते हैं; फिर रोनेसे कौन वापस आयेगा। मरनेके बाद तो नाम, शास्त्र, ज्ञान, यश और कर्मकी कथामात्र अवशिष्ट रह जाती है। इसलिये जो वेदविहित पारलौकिक कर्म है, इस समय तुम वही करो; क्योंकि जो परलोकके लिये हितकारी हो, वही वास्तवमें पुत्र है और वही बन्धु है। भृगुके उस वचनको सुनकर महासाध्वी रेणुकाने उसी क्षण शोकका परित्याग कर दिया और मुनिसे कहना आरम्भ किया। (अध्याय २७)

रेणुका-भृगु-संवाद, रेणुकाका पतिके साथ सती होना, परशुरामका पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया करके ब्रह्माके पास जाना और अपनी प्रतिज्ञा सुनाना, ब्रह्माका उन्हें शिवजीके पास भेजना

रेणुकाने पूछा—ब्रह्मन्! अब मैं अपने प्राणनाथका अनुगमन करना चाहती हूँ। दूसरोंको मान देनेवाले ये मेरे पतिदेव आज मेरे ऋतुकालके चौथे दिन मृत्युको प्राप्त हुए हैं; अत: वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुने! बतलाइये, अब इस विषयमें कैसी व्यवस्था करनी चाहिये। मेरे कई जन्मोंका पुण्य उदय हुआ है, जिसके फलस्वरूप आप सहसा उपस्थित हुए हैं।

भृगुने कहा—अहो महासति! तुम अपने पुण्यात्मा पतिका अनुगमन करो; क्योंकि ऋतुका चौथा दिन पतिके सभी कार्योंमें शुद्ध माना जाता है। जो भक्तिदाता है, वही पुत्र है; जो अनुगमन करती है, वही स्त्री है; जो दान देता है, वही बन्धु है; जो गुरुकी अर्चना करता है, वही शिष्य है; जो रक्षा करे, वही अभीष्ट देवता है; जो प्रजाका पालन करे, वही राजा है; जो अपनी पत्नीकी बुद्धिको धर्ममें नियोजित करता है, वही स्वामी है; जो धर्मोपदेशक तथा हरिभक्ति प्रदान करनेवाला

---

* ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम्। रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम्॥
(गणपतिखण्ड २७। ६२)

है, वही गुरु है—ये सभी वेदों तथा पुराणोंमें निश्चितरूपसे प्रशंसनीय कहे गये हैं।*

रेणुकाने पूछा—मुने! भारतवर्षमें कैसी नारियाँ अपने पतिके साथ सती हो सकती हैं और कैसी नहीं हो सकतीं? तपोधन! यह मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

भृगुने कहा—रेणुके! जिनके बच्चे छोटे हों, जो गर्भिणी हों, जिन्होंने ऋतुकालको देखा ही न हो, जो रजस्वला, कुलटा, कुष्ठरोगसे ग्रस्त, पतिकी सेवा न करनेवाली, पति-भक्तिरहित और कटुवादिनी हों—ये यदि दैववश सती भी हो जायँ तो वे अपने पतिको नहीं प्राप्त होतीं। पतिव्रताएँ चितामें शयन करनेवाले पतिको पहले संस्कारसे शुद्ध हुई आग देकर पीछे उसका अनुगमन करती हैं। यदि वे सचमुच पतिव्रता होती हैं तो अपने पतिको पा लेती हैं। जो अपने प्रियतमका अनुगमन करती हैं, वे उसीको पतिरूपमें पाती हैं और प्रत्येक जन्ममें उसीके साथ स्वर्गमें पुण्यका उपभोग करती हैं। पतिव्रते! गृहस्थोंकी यह व्यवस्था तो मैंने तुम्हें बतला दी। अब तीर्थमें मरनेवाले ज्ञानियों तथा वैष्णवोंके विषयमें श्रवण करो। जो साध्वी नारी जहाँ-जहाँ अपने वैष्णव पतिका अनुगमन करती है, वहाँ-वहाँ वह स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिकी संनिधि प्राप्त करती है। नारद! कृष्णभक्तिपरायण जीवन्मुक्त भक्तोंके तीर्थमें अथवा अन्यत्र मरनेमें कोई विशेषता नहीं है; क्योंकि उन्हें दोनों जगह समान फल मिलता है। इसलिये यदि स्त्री अथवा पुरुष भगवान् नारायण तथा कमलालया लक्ष्मीका भजन करे तो उस भजनके प्रभावसे महाप्रलय होनेपर भी उन दोनोंका नाश नहीं होता। वहाँ रेणुकासे इतना कहकर भृगुमुनि परशुरामसे समयोचित तथा वेदविहित वचन बोले।

''महाभाग वत्स! यहाँ आओ और इस अमाङ्गलिक शोकको त्याग दो। भृगुनन्दन! अपने पिताको दक्षिण सिर करके उत्तान कर दो, नया वस्त्र और यज्ञोपवीत पहनाओ और आँसू रोककर दक्षिणाभिमुख हो बैठ जाओ। फिर भक्तिपूर्वक अरणीसे उत्पन्न हुई अग्नि हाथमें लो और पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ हैं, उन सबका स्मरण करो। गया आदि तीर्थ, पुण्यमय पर्वत, कुरुक्षेत्र, सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा, यमुना, कौशिकी, सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली चन्द्रभागा, गण्डकी, काशी, पनसा, सरयू, पुष्पभद्रा, भद्रा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, स्वर्णरेखा, पुष्कर, रैवत, वराह, श्रीशैल, गन्धमादन, हिमालय, कैलास, सुमेरु, रत्नपर्वत, वाराणसी, प्रयाग, पुण्यमय वन वृन्दावन, हरिद्वार और बदरी—इनका बारंबार स्मरण करो। फिर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुगन्धित पुष्प देकर और वस्त्रसे आच्छादित करके पिताके शवको चिताके ऊपर स्थापित करो। तात! फिर सोनेकी सलाईसे कान, आँख, नाक और मुखमें निर्मन्थन करके उसे आदरसहित ब्राह्मणको दान कर दो। तत्पश्चात्, तिलसहित ताँबेका पात्र, गौ, चाँदी और सोना दक्षिणासहित दान करके स्वस्थचित्त हो दाह-कर्म करो। 'ॐ जो जानकारीमें अथवा अनजानमें पाप-कर्म करके मृत्यु-कालके वशीभूत हो पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। ॐ धर्म-अधर्मसे युक्त तथा लोभ-मोहसे समावृत उस मनुष्यके सारे शरीरको जलाता हूँ; वह दिव्य लोकोंमें जाय।' इस मन्त्रको पढ़कर पिताकी प्रदक्षिणा करो और फिर 'ॐ तुम हमारे कुलमें उत्पन्न हुए हो, मैं

* स पुत्रो भक्तिदाता यः सा च स्त्री यानुगच्छति । स बन्धुर्दानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत् स राजा पालयेत् प्रजाः । स च स्वामी प्रियां धर्मे मतिं दातुमिहेश्वरः॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः । एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥
(गणपतिखण्ड २८। ७—९)

पुनः तुम्हारा होकर उत्पन्न होऊँ, तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति हो स्वाहा' इस प्रकार उच्चारण करो तथा श्रीहरिका स्मरण करते हुए इसी मन्त्रसे पिताका दाह करो।* हे भृगुनन्दन! पहले तुम भाइयोंके साथ सिरमें आग लगाओ।'' तब भृगुमुनिके आज्ञानुसार परशुरामने अपने गोत्रवालोंके साथ वह सारा कार्य सम्पन्न किया।

तदनन्तर रेणुकाने वहाँ अपने पुत्र परशुरामको छातीसे लगा लिया और परिणाममें सुखदायक कुछ वचन कहे—'बेटा! इस भवसागरमें विरोध न करना सम्पूर्ण मङ्गलोंका मङ्गल है और विरोध नाशका कारण तथा समस्त उपद्रवोंका हेतु है। अतः भयंकर क्षत्रियोंके साथ विरोध न करना ही उचित है; किंतु मेरे सुनते-सुनते तुमने जो प्रतिज्ञा की है उसे पूर्ण करना चाहिये। इसके लिये तुम दिव्य मन्त्रोंके ज्ञाता भृगु और ब्रह्माके साथ विचार करके जैसा उचित हो वैसा करना। सज्जनोंद्वारा आलोचित कर्म शुभकारक होता है।' यों कहकर रेणुका परशुरामको छोड़कर अपने पतिका आलिङ्गन करके श्रीहरिका स्मरण करते हुए परशुरामकी ओर निहारती हुई चितामें सो गयी। तब भाइयोंके साथ परशुरामने चितामें आग लगा दी। फिर भाइयों और पिताके शिष्योंके साथ वे विलाप करने लगे। इतनेमें ही सती रेणुका 'राम, राम, राम' यों उच्चारण करके परशुरामके देखते-देखते जलकर राख हो गयी। तब अपने स्वामीका नाम सुनकर वहाँ श्रीहरिके दूत आ पहुँचे। वे सभी रथपर सवार थे। उनके शरीरका रंग श्याम था। सुन्दर चार भुजाएँ थीं, जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। उनके गलेमें वनमाला लटक रही थी और वे किरीट, कुण्डल तथा रेशमी पीताम्बरसे विभूषित थे। वे उस रेणुकाको रथमें बिठाकर ब्रह्मलोकमें गये और जमदग्निको लेकर श्रीहरिके संनिकट जा पहुँचे। वहाँ वैकुण्ठमें वे दोनों पति-पत्नी निरन्तर श्रीहरिकी परिचर्या, जो मङ्गलोंकी मङ्गल है, करते हुए श्रीहरिके संनिकट रहने लगे।

नारद! इधर परशुरामने ब्राह्मणों तथा भृगुजीके सहयोगसे माता-पिताकी शेष क्रिया समाप्त करके ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान दिया। फिर गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, सुवर्णनिर्मित पलंगसहित मनोरम दिव्य शय्या, जल, अन्न, चन्दन, रत्नदीप, चाँदीका पहाड़, सुवर्णके आधारसहित स्वर्णनिर्मित उत्तम आसन, सुवासित ताम्बूल, छत्र, पादुका, फल, मनोहर माला, फल-मूल-जल और मनोहर मिष्टान्न तथा धन ब्राह्मणोंको देकर वे ब्रह्मलोकको चल पड़े। ब्रह्मलोकमें पहुँचकर परशुरामने भक्तिभावसे अव्ययात्मा ब्रह्माजीको नमस्कार करके रोते हुए सारी घटना कह सुनायी। कृपामय ब्रह्माजीने सारी बातें सुनकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया और अपने हृदयसे लगा लिया। भृगुवंशी परशुरामकी बहुत-से जीवोंका विनाश करनेवाली, दुष्कर एवं भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माको महान् विस्मय हुआ। वे 'प्रारब्धवश सब कुछ घटित हो सकता है' ऐसा मनमें विचारकर परशुरामसे परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

ब्रह्माने कहा—वत्स! बहुसंख्यक जीवोंका विनाश करनेवाली तुम्हारी प्रतिज्ञा दुष्कर है; क्योंकि यह सृष्टि भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे उत्पन्न होती है। बेटा! उन्हीं परमेश्वरकी आज्ञासे

---

* ॐ कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥
ॐ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मन्त्रेणानेन देहाग्निं जनकाय हरिं स्मरन्॥
ॐ अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयो जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति वद साम्प्रतम्॥
(गणपतिखण्ड २८। ३२—३५)

मैंने बड़े कष्टसे इस सृष्टिकी रचना की है; किंतु तुम्हारी निर्दयतापूर्ण घोर प्रतिज्ञा सृष्टिका लोप कर देनेवाली है। तुम एक क्षत्रियके अपराधसे पृथ्वीको इक्कीस बार भूपरहित कर देना चाहते हो और क्षत्रिय-जातिको समूल नष्ट करनेकी तुमने ठान ली है। किंतु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—यह चार प्रकारकी सृष्टि नित्य है, जो श्रीहरिकी ही आज्ञासे पुनः-पुनः आविर्भूत और तिरोहित होती रहती है। अन्यथा किसी प्राक्तन कर्मानुसार तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। तुम्हें अपनी कार्यसिद्धिके लिये बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। अतः वत्स! तुम शिवलोकमें जाओ और शंकरकी शरण ग्रहण करो; क्योंकि भूतलपर बहुत-से नरेश शंकरके भक्त हैं। जब वे शक्तिस्वरूपा पार्वती और शंकरके दिव्य कवचको धारण करके खड़े होंगे, तब महेश्वरकी आज्ञाके बिना उन्हें मारनेमें कौन समर्थ हो सकता है? अतः जो विजयका कारण एवं शुभकारक है, उस उपायको तुम यत्नपूर्वक करो; क्योंकि उपायपूर्वक आरम्भ किये गये कार्य ही सिद्ध होते हैं। इसलिये तुम शंकरसे श्रीकृष्णके मन्त्र और कवचको ग्रहण करो। वह वैष्णव तेज परम दुर्लभ है। उसके प्रभावसे तुम शैव और शाक्त दोनों तेजोंपर विजय पा सकोगे। जगदीश्वर शिव तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरके गुरु हैं। अतः मुझसे मन्त्र ग्रहण करना तुम्हारे लिये युक्त नहीं है; क्योंकि जो उपयुक्त होता है, वही विधि है। कर्मभोगसे ही मन्त्र, स्वामी, स्त्री, गुरु और देवता प्राप्त होते हैं। जो जिनके हैं, वे उनके पास स्वयं ही उपस्थित होते हैं, यह ध्रुव है। भृगुनन्दन! तुम त्रैलोक्यविजय नामक श्रेष्ठ कवच ग्रहण करके इक्कीस बार पृथ्वीको भूपरहित कर डालोगे। दानी शंकर तुम्हें दिव्य पाशुपतास्त्र प्रदान करेंगे। उस दिये हुए मन्त्रके बलसे तुम क्षत्रियसमुदायको जीत लोगे। (अध्याय २८)

परशुरामका शिवलोकमें जाकर शिवजीके दर्शन करके उनकी स्तुति करना

नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर परशुरामने ब्रह्माकी बात सुनकर उन जगद्गुरुको प्रणाम किया और उनसे वरदान पाकर वे सफलमनोरथ हो शिवलोकको चले। वायुके आधारपर टिका हुआ वह मनोहर लोक एक लाख योजन ऊँचा तथा ब्रह्मलोकसे विलक्षण है। उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। उसके दक्षिणभागमें वैकुण्ठ और वामभागमें गौरीलोक है। नीचेकी ओर ध्रुवलोक है, जो सम्पूर्ण लोकोंसे परे कहा जाता है। उन सबके ऊपर पचास करोड़ योजनके विस्तारवाला गोलोक है। उससे ऊपर दूसरा लोक नहीं है। वही सर्वोपरि कहा जाता है। मनके समान वेगशाली योगीन्द्र परशुरामने उस शिवलोकको देखा। वह महान् अद्भुत लोक उपमान और उपमेयसे रहित अर्थात् अनुपम, श्रेष्ठ योगीन्द्रों, सिद्धों, विद्याविशारदों, करोड़ों कल्पोंकी तपस्यासे पवित्र शरीरवाले पुण्यात्माओंसे निषेवित, मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षोंके समूहोंसे परिवेष्टित, असंख्य कामधेनुओंके समुदायोंसे सुशोभित, पारिजात-वृक्षोंकी वनावलीसे विशेष शोभायमान, दस हजार पुष्पोद्यानोंसे युक्त, सदा उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न, बहुमूल्य मणियोंद्वारा रचित सुन्दर मणिवेदियों तथा सैकड़ों दिव्य राजमार्गोंद्वारा बाहर-भीतर विभूषित और नाना प्रकारकी पच्चीकारीसे युक्त उत्तम मणियोंके कलशोंसे उज्ज्वल दीखनेवाले अमूल्य मणियोंद्वारा निर्मित सौ करोड़ भवनोंसे युक्त था।

उसके रमणीय मध्यभागमें उन्हें शंकरजीका भवन दीख पड़ा। उस परम मनोहर भवनके चारों ओर बहुमूल्य मणियोंकी चहारदीवारीका निर्माण

हुआ था। वह इतना ऊँचा था कि आकाशका स्पर्श कर रहा था। उसका रंग दूध और जलके समान उज्ज्वल था। उसमें सोलह दरवाजे थे तथा वह सैकड़ों ऐसे मन्दिरोंसे सुशोभित था, जो अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित तथा रत्नोंकी सीढ़ियोंसे विभूषित थे। उनमें हीरे जड़े हुए रत्नोंके खंभे और किवाड़ लगे थे। वे मणियोंकी जालियोंसे सुशोभित, उत्तम रत्नोंके कलशोंसे प्रकाशित, नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे चित्रित अतएव परम मनोहर थे। वहाँ उस भवनके आगे परशुरामने सिंहद्वारका दर्शन किया, जिसमें बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए किवाड़ लगे थे। उसका भीतरी भाग पद्मराग एवं महामरकत मणियोंद्वारा रचित वेदियोंसे सदा बाहर-भीतर सुशोभित रहता था। नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित होनेके कारण वह अत्यन्त सुहावना लग रहा था। उसके द्वारपर दो भयंकर द्वारपाल नियुक्त थे, जिन्हें परशुरामने देखा। उनकी आकृति बेडौल थी, दाँत और मुख बड़े विकराल थे। तीन बड़े-बड़े नेत्र थे, जिनमें कुछ पीलिमा और ललाई छायी हुई थी। वे जले हुए पर्वतके समान काले और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। शरीर उत्तम बाघम्बर तथा विभूतिसे विभूषित थे। त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए वे दोनों ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें देखकर परशुरामका मन भयग्रस्त हो गया। फिर भी वे डरते-डरते कुछ कहनेको उद्यत हुए। उन्होंने विनीत होकर बड़ी नम्रताके साथ उन दोनों महाबली उच्छृंखलोंके सामने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणकी बात सुनकर उन दोनोंके मनमें दयाका संचार हो आया, तब उन श्रेष्ठ अनुचरोंने दूतद्वारा महात्मा शंकरकी आज्ञा लेकर परशुरामको भीतर प्रवेश करनेका आदेश दिया। परशुराम उनकी आज्ञा पाकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए भवनके अंदर प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने एक-एक करके सोलह दरवाजोंको देखा, जो नाना प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित होनेके कारण अत्यन्त सुन्दर थे तथा उनपर द्वारपाल नियुक्त थे। उन्हें देखकर परशुरामको महान् आश्चर्य हुआ। आगे बढ़नेपर उन्हें शंकरजीकी सभा दिखायी पड़ी, जो बहुत-से सिद्धगणोंसे व्याप्त, महर्षियोंद्वारा सेवित तथा पारिजात-पुष्पोंके गन्धसे युक्त वायुद्वारा सुवासित थी। उस सभामें उन्होंने देवेश्वर शंकरके दर्शन किये। वे रत्नाभरणोंसे सुसज्जित हो रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। उनके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था। वे बाघाम्बर पहने तथा त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए थे। उनका शरीर विभूतिसे सुशोभित था। वे सर्पका यज्ञोपवीत पहने थे तथा महान् कल्याणस्वरूप, कल्याण करनेवाले, कल्याणके कारण, कल्याणके आश्रयस्थान, आत्मामें रमण करनेवाले, पूर्णकाम और करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली थे। उनका मुख प्रसन्न था, जिसपर मन्द मुस्कानकी अद्भुत छटा बिखर रही थी, वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये अधीर हो रहे थे। वे सनातन ज्योतिःस्वरूप, लोकोंके लिये अनुग्रहके मूर्त रूप, जटाधारी, सतीकी हड्डियोंसे शोभित, तपस्याओंके फल देनेवाले तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता थे। उनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके सदृश उज्ज्वल था। उनके पाँच मुख और तीन नेत्र थे। वे तत्त्वमुद्राद्वारा शिष्योंको गुह्य ब्रह्मका उपदेश कर रहे थे। योगीन्द्र उनके स्तवनमें तथा बड़े-बड़े सिद्ध उनकी सेवामें नियुक्त थे। श्रेष्ठ पार्षद श्वेत चँवरोंद्वारा निरन्तर उनकी सेवा कर रहे थे। वे बुढ़ापा और मृत्युका हरण करनेवाले, गुणातीत, स्वेच्छामय, परिपूर्णतम परब्रह्मके ध्यानमें निमग्न थे, जो ज्योतीरूप सबके आदि, प्रकृतिसे परे और परमानन्दमय हैं। उन श्रीकृष्णका ध्यान करते समय उनके शरीरमें रोमाञ्च हो रहा था तथा वे आँखोंमें आँसू भरे उत्तम स्वरसे उनकी गुणावलीका गान कर रहे थे और भूतेश्वर, रुद्रगण तथा क्षेत्रपाल उन्हें घेरे हुए थे। उन्हें देखकर परशुरामने

बड़े आदरके साथ सिर झुकाकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् शिवजीके वामभागमें कार्तिकेय, दाहिनी ओर गणेश्वर, सामने नन्दीश्वर, महाकाल और वीरभद्र तथा उनकी गोदमें उनकी प्रियतमा पत्नी गिरिराजनन्दिनी गौरीको देखा। उन सबको भी परशुरामने बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर नमस्कार किया। उस समय शिवजीका दर्शन करके परशुराम परम संतुष्ट हुए। शोकसे पीड़ित तो वे थे ही; अतः आँखोंमें आँसू भरकर अत्यन्त कातर हो हाथ जोड़कर शान्तभावसे दीन एवं गद्गदवाणीके द्वारा शिवजीकी स्तुति करने लगे।

परशुराम बोले—ईश! मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, परंतु स्तवन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। आप अक्षर और अक्षरके कारण तथा इच्छारहित हैं, तब मैं आपकी क्या स्तुति करूँ? मैं मन्दबुद्धि हूँ; मुझमें शब्दोंकी योजना करनेका ज्ञान तो है नहीं और चला हूँ देवेश्वरकी स्तुति करने। भला, जिनका स्तवन करनेकी शक्ति वेदोंमें नहीं है, उन आपकी स्तुति करके कौन पार पा सकता है? आप मन, बुद्धि और वाणीके अगोचर, सारसे भी साररूप, परात्पर, ज्ञान और बुद्धिसे असाध्य, सिद्ध, सिद्धोंद्वारा सेवित, आकाशकी तरह आदि, मध्य और अन्तसे हीन तथा अविनाशी, विश्वपर शासन करनेवाले, तन्त्ररहित, स्वतन्त्र, तन्त्रके कारण, ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य, साधन करनेमें अत्यन्त सुगम और दयाके सागर हैं। दीनबन्धो! मैं अत्यन्त दीन हूँ। करुणासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। आज मेरा जन्म सफल तथा जीवन सुजीवन हो गया; क्योंकि भक्तगण जिन्हें स्वप्नमें भी नहीं देख पाते, उन्हींको इस समय मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। जिनकी कलासे इन्द्र आदि देवगण तथा जिनके कलांशसे चराचर प्राणी उत्पन्न हुए हैं, उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, जल और वायुके रूपमें विराजमान हैं, उन महेश्वरको मैं अभिवादन करता हूँ। जो स्त्रीरूप, नपुंसकरूप और पुरुषरूप धारण करके जगत्का विस्तार करते हैं, जो सबके आधार और सर्वरूप हैं, उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। हिमालयकन्या देवी पार्वतीने कठोर तपस्या करके जिनको प्राप्त किया है। दीर्घ तपस्याके द्वारा भी जिनका प्राप्त होना दुर्लभ है; उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सबके लिये कल्पवृक्षरूप हैं और अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करते हैं, जो बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और जो भक्तोंके बन्धु हैं; उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो लीलापूर्वक क्षणभरमें अनन्त विश्व-सृष्टियोंका संहार करनेवाले हैं; उन भयंकर रूपधारी महेश्वरको मेरा प्रणाम है। जो कालरूप, कालके काल, कालके कारण और कालसे उत्पन्न होनेवाले हैं तथा जो अजन्मा एवं बारंबार जन्म धारण करनेवाले आदि सब कुछ हैं; उन महेश्वरको मैं मस्तक झुकाता हूँ। यों कहकर भृगुवंशी परशुराम शंकरजीके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। तब शिवजीने परम प्रसन्न होकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिये। नारद! जो भक्तिभावसहित इस परशुरामकृत स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे पूर्णतया मुक्त होकर शिवलोकमें जाता है।*

(अध्याय २९)

---

* परशुराम उवाच—

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमम्। अक्षराक्षरबीजं च किं वा स्तौमि निरीहकम्॥
न योजनां कर्तुमीशो देवेशं स्तौमि मूढधीः। वेदा न शक्ता यं स्तोतुं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥
बुद्धेर्वाङ्मनसोः पारं सारात्सारं परात्परम्। ज्ञानबुद्धेरसाध्यं च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम्॥

परशुरामका शिवजीसे अपना अभिप्राय प्रकट करना, उसे सुनकर भद्रकालीका कुपित होना, परशुरामका रोने लगना, शिवजीका कृपा करके उन्हें नानाप्रकारके दिव्यास्त्र एवं शस्त्रास्त्र प्रदान करना

तदनन्तर महादेवजीके पूछनेपर परशुरामने कहा—'दयानिधान! मैं भृगुवंशी जमदग्निका पुत्र परशुराम हूँ। आपका दास हूँ। आपके शरणागत हूँ। आप मेरी रक्षा करें।' इसके बाद सारी

घटना विस्तारसे सुनाकर परशुरामने कहा कि मैंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियशून्य करने तथा मेरे पिताका वध करनेवाले कार्तवीर्यको मारनेकी प्रतिज्ञा की है। आप मेरी प्रतिज्ञाको पूर्ण करें।

इस बातको सुनकर भगवती पार्वती और भद्रकालीने क्रुद्ध होकर परशुरामकी भर्त्सना की। तब परशुराम भगवती गौरी और कालिकाके क्रोधभरे वचन सुनकर उच्चस्वरसे रोने लगे और प्राण-विसर्जनके लिये तैयार हो गये। तब दयासागर भक्तानुग्रहकारी प्रभु महादेवने ब्राह्मण-बालकको रोते देखकर स्नेहार्द्रचित्तसे अत्यन्त विनयपूर्ण वचनोंके द्वारा गौरी और कालिकाका क्रोध शान्त किया और उन दोनोंकी तथा अन्यान्य सबकी अनुमति लेकर परशुरामसे कहना आरम्भ किया।

शंकरजीने कहा—हे वत्स! आजसे तुम मेरे लिये एक श्रेष्ठ पुत्रके समान हुए; अतः मैं तुम्हें ऐसा गुह्य मन्त्र प्रदान करूँगा, जो त्रिलोकीमें दुर्लभ है। इसी प्रकार एक ऐसा परम अद्भुत कवच बतलाऊँगा, जिसे धारण करके तुम मेरी कृपासे अनायास ही कार्तवीर्यका वध कर डालोगे। विप्रवर! तुम इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे शून्य भी कर दोगे और सारे जगत्में तुम्हारी कीर्ति

यमाकाशमिवाद्यन्तमध्यहीनं तथाव्ययम्। विश्वतन्त्रमतन्त्रं च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम्॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्। त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम्॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। स्वप्नादृष्टं च भक्तानां पश्यामि चक्षुषाधुना॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य सम्भवाः। चराचराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम्॥
यं भास्करस्वरूपं च शशिरूपं हुताशनम्। जलरूपं वायुरूपं तं नमामि महेश्वरम्॥
स्त्रीरूपं क्लीबरूपं च पुंरूपं च बिभर्ति यः। सर्वाधारं सर्वरूपं तं नमामि महेश्वरम्॥
देव्या कठोरतपसा यो लब्धो गिरिकन्यया। दुर्लभस्तपसां यो हि तं नमामि महेश्वरम्॥
सर्वेषां कल्पवृक्षं च वाञ्छाधिकफलप्रदम्। आशुतोषं भक्तबन्धुं तं नमामि महेश्वरम्॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्तारं भयंकरम्। क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम्॥
यः कालः कालकालश्च कालबीजं च कालजः। अजः प्रजश्च यः सर्वस्तं नमामि महेश्वरम्॥
इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे। आशिषं च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो बभूव सः॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिसंयुतः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति॥

(गणपतिखण्ड २९। ४३—५७)

व्याप्त हो जायगी—इसमें संशय नहीं है।

नारद! इतना कहकर शंकरजीने परशुरामको परम दुर्लभ मन्त्र और 'त्रैलोक्यविजय' नामक परम अद्भुत कवच प्रदान किया। फिर स्तोत्र, पूजाका विधान, पुरश्चरणपूर्वक मन्त्रसिद्धिका अनुष्ठान, नियमका ठीक-ठीक क्रम, सिद्धिस्थान और कालकी संख्या आदि बतलायी। उसी समय उन्हें सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग भी पढ़ा दिये। तत्पश्चात् शिवजीने परशुरामको नागपाश, पाशुपतास्त्र, अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, नारायणास्त्र, वायव्यास्त्र, वारुणास्त्र, गान्धर्वास्त्र, गारुडास्त्र, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति, परशु, अमोघ उत्तम त्रिशूल, विधिपूर्वक नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंके मन्त्र, शस्त्रास्त्रोंके संहार और संधान, अक्षय धनुष, आत्मरक्षाका उपाय, संग्राममें विजय पानेका क्रम, अनेक प्रकारके मायायुद्ध, मन्त्रपूर्वक हुंकार, अपनी सेनाकी रक्षा तथा शत्रुसेनाके विनाशका ढंग, युद्धसंकटके समय नाना प्रकारके अनुपम उपाय, संसारको मोहित करनेवाली तथा बुढ़ापा और मृत्युका हरण करनेवाली विद्या भी सिखायी। परशुरामने चिरकालतक गुरुकुलमें ठहरकर सम्पूर्ण विद्याओंको सीखा। फिर तीर्थमें जाकर मन्त्रसिद्धि प्राप्त की। इसके बाद शिव आदिको नमस्कार करके वे अपने आश्रमको लौट आये।

(अध्याय ३०)

शिवजीका प्रसन्न होकर परशुरामको त्रैलोक्यविजय नामक कवच प्रदान करना

नारदने पूछा—भगवन्! अब मेरी यह सुननेकी इच्छा है कि भगवान् शंकरने दयावश परशुरामको कौन-सा मन्त्र तथा कौन-सा स्तोत्र और कवच दिया था? उस मन्त्रके आराध्य देवता कौन हैं? कवच धारण करनेका क्या फल है? तथा स्तोत्रपाठसे किस फलकी प्राप्ति होती है? वह सब आप बतलाइये।

नारायण बोले—नारद! उस मन्त्रके आराध्य देव गोलोकनाथ गोपगोपीश्वर सर्वसमर्थ परिपूर्णतम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। शंकरने रत्नपर्वतके निकट स्वयंप्रभा नदीके तटपर पारिजात वनके मध्य स्थित आश्रममें लोकोंके देवता माधवके समक्ष परशुरामको 'त्रैलोक्यविजय' नामक परम अद्भुत कवच, विभूतियोगसे सम्भूत महान् पुण्यमय 'स्तवराज' नामवाला स्तोत्र और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला 'मन्त्रकल्पतरु' नामक मन्त्र प्रदान किया था।

महादेवजीने कहा—भृगुवंशी महाभाग वत्स! तुम प्रेमके कारण मुझे पुत्रसे भी अधिक प्रिय हो; अतः आओ कवच ग्रहण करो। राम! जो ब्रह्माण्डमें परम अद्भुत तथा विजयप्रद है, श्रीकृष्णके उस 'त्रैलोक्यविजय' नामक कवचका वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें श्रीकृष्णने गोलोकमें स्थित वृन्दावन नामक वनमें राधिकाश्रममें रासमण्डलके मध्य यह कवच मुझे दिया था। यह अत्यन्त गोपनीय तत्त्व, सम्पूर्ण मन्त्रसमुदायका विग्रहस्वरूप, पुण्यसे भी बढ़कर पुण्यतर परमोत्कृष्ट है और इसे स्नेहवश मैं तुम्हें बता रहा हूँ। जिसे पढ़कर एवं धारण करके मूलप्रकृति भगवती आद्याशक्तिने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर और रक्तबीजका वध किया था। जिसे धारण करके मैं लोकोंका संहारक और सम्पूर्ण तत्त्वोंका जानकार हुआ हूँ तथा पूर्वकालमें जो दुरन्त और अवध्य थे, उन त्रिपुरोंको खेल-ही-खेलमें दग्ध कर सका हूँ। जिसे पढ़कर और धारण करके ब्रह्माने इस उत्तम सृष्टिकी रचना की है। जिसे धारण करके भगवान् शेष सारे विश्वको धारण करते हैं। जिसे धारण करके कूर्मराज शेषको

लीलापूर्वक धारण किये रहते हैं। जिसे धारण करके स्वयं सर्वव्यापक भगवान् वायु विश्वके आधार हैं। जिसे धारण करके वरुण सिद्ध और कुबेर धनके स्वामी हुए हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके स्वयं इन्द्र देवताओंके राजा बने हैं। जिसे धारण करके तेजोराशि स्वयं सूर्य भुवनमें प्रकाशित होते हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके चन्द्रमा महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हुए हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके महर्षि अगस्त्य सातों समुद्रोंको पी गये और उसके तेजसे वातापि नामक दैत्यको पचा गये। जिसे पढ़कर एवं धारण करके पृथ्वीदेवी सबको धारण करनेमें समर्थ हुई हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके गङ्गा स्वयं पवित्र होकर भुवनोंको पावन करनेवाली बनी हैं। जिसे धारण करके धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्म लोकोंके साक्षी बने हैं। जिसे धारण करके सरस्वतीदेवी सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिष्ठात्रीदेवी हुई हैं। जिसे धारण करके परात्परा लक्ष्मी लोकोंको अन्न प्रदान करनेवाली हुई हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके सावित्रीने वेदोंको जन्म दिया है। भृगुनन्दन! जिसे पढ़ एवं धारणकर वेद धर्मके वक्ता हुए हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके अग्नि शुद्ध एवं तेजस्वी हुए हैं और जिसे धारण करके भगवान् सनत्कुमारको ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला है। जो महात्मा, साधु एवं श्रीकृष्णभक्त हो, उसीको यह कवच देना चाहिये; क्योंकि शठ एवं दूसरेके शिष्यको देनेसे दाता मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

इस त्रैलोक्यविजय कवचके प्रजापति ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। स्वयं रासेश्वर देवता हैं और त्रैलोक्यकी विजयप्राप्तिमें इसका विनियोग कहा गया है। यह परात्पर कवच तीनों लोकोंमें दुर्लभ है। '**ॐ श्रीकृष्णाय नमः**' सदा मेरे सिरकी रक्षा करे। '**कृष्णाय स्वाहा**' यह पञ्चाक्षर सदा कपालको सुरक्षित रखे। '**कृष्ण**' नेत्रोंकी तथा '**कृष्णाय स्वाहा**' पुतलियोंकी रक्षा करे। '**हरये नमः**' सदा मेरी भृकुटियोंको बचावे। '**ॐ गोविन्दाय स्वाहा**' मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करे। '**गोपालाय नमः**' मेरे गण्डस्थलोंकी सदा सब ओरसे रक्षा करे। '**ॐ गोपाङ्गनेशाय नमः**' सदा मेरे कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ कृष्णाय नमः**' निरन्तर मेरे दोनों ओठोंकी रक्षा करे। '**ॐ गोविन्दाय स्वाहा**' सदा मेरी दन्तपङ्क्तिकी रक्षा करे। '**ॐ कृष्णाय नमः**' दाँतोंके छिद्रोंकी तथा '**क्लीं**' दाँतोंके ऊर्ध्वभागकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहा**' सदा मेरी जिह्वाकी रक्षा करे। '**रासेश्वराय स्वाहा**' सदा मेरे तालुकी रक्षा करे। '**राधिकेशाय स्वाहा**' सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। '**गोपाङ्गनेशाय नमः**' सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। '**ॐ गोपेशाय स्वाहा**' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। '**नमः किशोरवेशाय स्वाहा**' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। '**मुकुन्दाय नमः**' सदा मेरे उदरकी तथा '**ॐ ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा**' सदा मेरे हाथ-पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ विष्णवे नमः**' सदा मेरी दोनों भुजाओंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा**' सदा मेरे नखोंकी रक्षा करे। '**ॐ नमो नारायणाय**' सदा नख-छिद्रोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नमः**' सदा मेरी नाभिकी रक्षा करे। '**ॐ सर्वेशाय स्वाहा**' सदा मेरे कङ्कालकी रक्षा करे। '**ॐ गोपीरमणाय स्वाहा**' सदा मेरे नितम्बकी रक्षा करे। '**ॐ गोपीरमणनाथाय स्वाहा**' सदा मेरे पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा**' सदा मेरे सर्वाङ्गोंकी रक्षा करे। '**ॐ केशवाय स्वाहा**' सदा मेरे केशोंकी रक्षा करे। '**नमः कृष्णाय स्वाहा**' सदा मेरे ब्रह्मरन्ध्रकी रक्षा करे। '**ॐ माधवाय स्वाहा**' सदा मेरे रोमोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा**' मेरे सर्वस्वकी सदा रक्षा करे। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण पूर्व दिशामें सर्वदा मेरी रक्षा करें। स्वयं गोलोकनाथ अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। पूर्णब्रह्मस्वरूप दक्षिण दिशामें सदा

मेरी रक्षा करें। श्रीकृष्ण नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। श्रीहरि पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। गोविन्द वायव्यकोणमें नित्य-निरन्तर मेरी रक्षा करें। रसिकशिरोमणि उत्तर दिशामें सदा मेरी रक्षा करें। वृन्दावनविहारकृत् सदा ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। वृन्दावनीके प्राणनाथ ऊर्ध्वभागमें मेरी रक्षा करें। महाबली बलिहारी माधव सदैव मेरी रक्षा करें। नृसिंह जल, स्थल तथा अन्तरिक्षमें सदा मुझे सुरक्षित रखें। माधव सोते समय तथा जाग्रत्-कालमें सदा मेरा पालन करें तथा जो सबके अन्तरात्मा, निर्लेप और सर्वव्यापक हैं, वे भगवान् सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

वत्स! इस प्रकार मैंने 'त्रैलोक्यविजय' नामक कवच, जो परम अनोखा तथा समस्त मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है, तुम्हें बतला दिया। मैंने इसे श्रीकृष्णके मुखसे श्रवण किया था। इसे जिस-किसीको नहीं बतलाना चाहिये। जो विधिपूर्वक गुरुका पूजन करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह भी विष्णुतुल्य हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। वह भक्त जहाँ रहता है, वहाँ लक्ष्मी और सरस्वती निवास करती हैं। यदि उसे कवच सिद्ध हो जाता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है और उसे करोड़ों वर्षोंकी पूजाका फल प्राप्त हो जाता है। हजारों राजसूय, सैकड़ों वाजपेय, दस हजार अश्वमेध, सम्पूर्ण महादान तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा—ये सभी इस त्रैलोक्यविजयकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकते। व्रत-उपवासका नियम, स्वाध्याय, अध्ययन, तपस्या और समस्त तीर्थोंमें स्नान—ये सभी इसकी एक कलाको भी नहीं पा सकते। यदि मनुष्य इस कवचको सिद्ध कर ले तो निश्चय ही उसे सिद्धि, अमरता और श्रीहरिकी दासता आदि सब कुछ मिल जाता है। जो इसका दस लाख जप करता है, उसे यह कवच सिद्ध हो जाता है और जो सिद्धकवच होता है, वह निश्चय ही सर्वज्ञ हो जाता है। परंतु जो इस कवचको जाने बिना श्रीकृष्णका भजन करता है, उसकी बुद्धि अत्यन्त मन्द है; उसे करोड़ों कल्पोंतक जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता। वत्स! इस कवचको धारण करके तुम आनन्दपूर्वक निःशङ्क होकर अनायास ही इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर डालो। बेटा! प्राणसंकटके समय राज्य दिया जा सकता है, सिर कटाया जा सकता है और प्राणोंका परित्याग भी किया जा सकता है; परंतु ऐसे कवचका दान नहीं करना चाहिये*। (अध्याय ३१)

---

* महादेव उवाच—

वत्सागच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भव । पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचं ग्रहणं कुरु॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम् । त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णस्य जयावहम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रये । रासमण्डलमध्ये च मह्यं वृन्दावने वने॥
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । पुण्यात् पुण्यतरं चैव परं स्नेहाद् वदामि ते॥
यद् धृत्वा पठनाद् देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी । शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघान ह॥
यद् धृत्वाहं च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित् । अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमवलीलया॥
यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम् । यद् धृत्वा भगवान् शेषो विधत्ते विश्वमेव च॥
यद् धृत्वा कूर्मराजश्च शेषं धत्तेऽवलीलया । यद् धृत्वा भगवान् वायुर्विश्वाधारो विभुः स्वयम्॥
यद् धृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः । यद् धृत्वा पठनादिन्द्रो देवानामधिपः स्वयम्॥
यद् धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः । यद् धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः॥
अगस्त्यः सागरान् सप्त यद् धृत्वा पठनात् पपौ । चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम्॥
यद् धृत्वा पठनाद् देवी सर्वाधारा वसुन्धरा । यद् धृत्वा पठनात् पूता गङ्गा भुवनपावनी॥

शिवजीका परशुरामको मन्त्र, ध्यान, पूजाविधि और स्तोत्र प्रदान करना

परशुरामने कहा—नाथ! जो सम्पूर्ण अङ्गोंकी रक्षा करनेवाला, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारसर्वस्व तथा शत्रुओंके संहारका कारण है, वह कवच तो मुझे प्राप्त हो गया। सामर्थ्यशाली भगवन्! अब मुझ अनाथको मन्त्र, स्तोत्र और पूजाविधि प्रदान कीजिये; क्योंकि आप शरणागतके पालक हैं।

महादेवजी बोले—भृगुनन्दन! '**ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा**' यह सप्तदशाक्षर महामन्त्र सभी मन्त्रोंमें मन्त्रराज है। मुनिवर! पाँच लाख जप करनेसे यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। उस समय जपका दशांश हवन, हवनका दशांश अभिषेक, अभिषेकका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश मार्जन करनेका विधान है तथा सौ मोहरें इस पुरश्चरणकी दक्षिणा बतायी गयी हैं। मुने!

यद् धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः। सर्वविद्याधिदेवी सा यच्च धृत्वा सरस्वती॥
यद् धृत्वा जगतां लक्ष्मीरन्नदात्री परात्परा। यद् धृत्वा पठनाद् वेदान् सावित्री प्रसुषाव च॥
वेदाश्च धर्मवक्तारो यद् धृत्वा पठनाद् भृगो। यद् धृत्वा पठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः॥
सनत्कुमारो भगवान् यद् धृत्वा ज्ञानिनां वरः। दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्। त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो रासेश्वरः स्वयम्। त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः॥
परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्। प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा॥
सदा पायात् कपालं कृष्णाय स्वाहेति पञ्चाक्षरः। कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्वाहेति तारकम्॥
हरये नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा। ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम्॥
गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा। ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम॥
ॐ कृष्णाय नमः शश्वत् पातु मेऽधरयुग्मकम्। ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तावलिं मे सदावतु॥
ॐ कृष्णाय दन्तरन्ध्रं दन्तोर्ध्वं क्लीं सदावतु। ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा॥
रासेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा। राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम॥
नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम। ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम॥
नमः किशोरवेशाय स्वाहा पृष्ठं सदावतु। उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमः सदा॥
ॐ ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पादौ सदा मम। ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम॥
ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा। ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदावतु॥
ॐ ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम। ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा॥
ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा। ॐ गोपीरमणनाथाय पादौ पातु सदा मम॥
ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदावतु। ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान् सदावतु॥
नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदावतु। ॐ माधवाय स्वाहेति लोमानि मे सदावतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदावतु॥
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदावतु। स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदावतु। नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद् वायव्यां दिशि नित्यशः। उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत्। वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः। जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् पातु मां माधवः सदा। सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तो रक्ष मां सर्वतो विभुः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात् प्रवक्तव्यं न कस्यचित्। गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत् तु यः॥

जिस पुरुषको यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, उसके लिये विश्व करतलगत हो जाता है। वह समुद्रोंको पी सकता है, विश्वका संहार करनेमें समर्थ हो जाता है और इसी पाञ्चभौतिक शरीरसे वैकुण्ठमें जा सकता है। उसके चरणकमलकी धूलिके स्पर्शमात्रसे सारे तीर्थ पवित्र हो जाते हैं और पृथ्वी तत्काल पावन हो जाती है। मुने! जो भोग और मोक्षका प्रदाता है, सर्वेश्वर श्रीकृष्णका वह सामवेदोक्त ध्यान मेरे मुखसे श्रवण करो। जो रत्ननिर्मित सिंहासनपर आसीन हैं; जिनका वर्ण नूतन जलधरके समान श्याम है; नेत्र नीले कमलकी शोभा छीने लेते हैं; मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रमाको मात कर रहा है, उसपर मन्द मुस्कानकी मनोहर छटा छायी हुई है। जो करोड़ों कामदेवोंकी भाँति सुन्दर, लीलाके धाम, मनोहर और रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित हैं। जिनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दनकी खौर लगी है। जो श्रेष्ठ पीताम्बर धारण किये हुए हैं। मुस्कराती हुई गोपियाँ सदा जिनकी ओर निहार रही हैं। जो प्रफुल्ल मालती-पुष्पोंकी माला तथा वनमालासे विभूषित हैं। जो सिरपर ऐसी कलँगी धारण किये हुए हैं, जिसमें कुन्द-पुष्पोंकी बहुतायत है, जो कर्पूरसे सुवासित है और चन्द्रमा एवं ताराओंसे युक्त आकाशकी प्रभाका उपहास कर रही है। जिनके सर्वाङ्गमें रत्नोंके भूषण सुशोभित हैं। जो राधाके वक्षःस्थलमें विराजमान रहते हैं। सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र और देवेन्द्र जिनकी सेवामें लगे रहते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश और श्रुतियाँ जिनका स्तवन करती रहती हैं; उन श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।

जो मनुष्य इस ध्यानसे श्रीकृष्णका ध्यान करके उन्हें षोडशोपचार समर्पित कर भक्तिपूर्वक उनका भलीभाँति पूजन करता है, वह सर्वज्ञत्व प्राप्त कर लेता है। (पूजनकी विधि यों है—)पहले भगवान्‌को भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य, आसन, वस्त्र, भूषण, गौ, अर्घ्य, मधुपर्क, परमोत्तम यज्ञसूत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः आचमन, अनेक प्रकारके पुष्प, सुवासित ताम्बूल, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, मनोहर दिव्य शय्या, माला और तीन पुष्पाञ्जलि निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर षडङ्गकी पूजा करके फिर गणकी विधिवत् पूजा करे। तत्पश्चात् श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, हरिभानु, चन्द्रभानु, सूर्यभानु और सुभानु—इन सातों श्रेष्ठ पार्षदोंका भक्तिभावसहित पूजन करे। फिर जो गोपीश्वरी, मूलप्रकृति, आद्याशक्ति, कृष्णशक्ति और कृष्णद्वारा पूज्य हैं, उन राधिकाकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। विद्वान्‌को चाहिये कि वह गोप और गोपियोंके समुदाय, मुझ शान्तस्वरूप महादेव, ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी, विग्रहधारी सम्पूर्ण देवता और देवषट्ककी पञ्चोपचारद्वारा

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः। स च भक्तो वसेद् यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः। निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च। अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्ययनं तपः। स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हन्ति कलामपि॥
सिद्धित्वममरत्वं च दास्यत्वं श्रीहरेरपि। यदि स्यात् सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम्॥
स भवेत् सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः। यो भवेत् सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद् ध्रुवम्॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कृष्णं सुमन्दधीः। कोटिकल्पप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्रियां कुरु। त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दोऽवलीलया॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक। एवंभूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे॥
(गणपतिखण्ड ३१। ७—५७)

सम्यक्-रूपसे पूजा करे। तत्पश्चात् इसी क्रमसे श्रीकृष्णका पूजन करे। फिर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छ: देवोंकी भलीभाँति अर्चना करके इष्टदेवकी पूजा करे। विघ्ननाशके लिये गणेशका, व्याधिनाशके लिये सूर्यका, आत्मशुद्धिके लिये अग्निका, मुक्तिके लिये श्रीविष्णुका, ज्ञानके लिये शंकरका और परमैश्वर्यकी प्राप्तिके लिये दुर्गाका पूजन करनेपर यह फल मिलता है। यदि इनका पूजन न किया जाय तो विपरीत फल प्राप्त होता है। तदनन्तर भक्तिभावसहित इष्टदेवका परिहार करके भक्तिपूर्वक सामवेदोक्त स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। (वह स्तोत्र बतलाता हूँ) उसे श्रवण करो।

महादेवजीने कहा—जो परब्रह्म, परम धाम, परम ज्योति, सनातन, निर्लिप्त और सबके कारण हैं, उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो स्थूलसे स्थूलतम, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम, सबके देखनेयोग्य, अदृश्य और स्वेच्छाचारी हैं, उन उत्कृष्ट देवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, सबके आधार, सर्वस्वरूप और स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हैं; उन प्रभुको मेरा अभिवादन है। जिनका रूप अत्यन्त सुन्दर है, जो उपमारहित हैं और अत्यन्त कराल रूप धारण करते हैं; उन सर्वव्यापी भगवान्‌को मैं सिर झुकाता हूँ। जो कर्मके कर्मरूप, समस्त कर्मोंके साक्षी, फल और फलदाता हैं; उन सर्वरूपको मेरा नमस्कार है। जो पुरुष अपनी कलासे विभिन्न मूर्ति धारण करके सृष्टिका रचयिता, पालक और संहारक हैं तथा जो कलांशसे नाना प्रकारकी मूर्ति धारण करते हैं; उनके चरणोंमें मैं प्रणिपात करता हूँ। जो मायाके वशीभूत होकर स्वयं प्रकृतिरूप हैं और स्वयं पुरुष हैं तथा स्वयं इन दोनोंसे परे हैं; उन परात्परको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो अपनी मायासे स्त्री, पुरुष और नपुंसकका रूप धारण करते हैं तथा जो देव स्वयं माया और स्वयं मायेश्वर हैं; उन्हें मेरा प्रणाम है। जो सम्पूर्ण दु:खोंसे उबारनेवाले, सभी कारणोंके कारण और समस्त विश्वोंको धारण करनेवाले हैं, सबके कारणस्वरूप हैं; उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेजस्वियोंमें सूर्य, सम्पूर्ण जातियोंमें ब्राह्मण और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हैं; उन जगदीश्वरको मेरा अभिवादन है। जो रुद्रों, वैष्णवों और ज्ञानियोंमें शंकर हैं तथा जो नागोंमें शेषनाग हैं; उन जगत्पतिको मैं मस्तक झुकाता हूँ। जो प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, सिद्धोंमें स्वयं कपिल और मुनियोंमें सनत्कुमार हैं; उन जगद्गुरुको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। जो देवताओंमें विष्णु, देवियोंमें स्वयं प्रकृति, मनुओंमें स्वायम्भुव मनु, मनुष्योंमें वैष्णव और नारियोंमें शतरूपा हैं; उन बहुरूपियेको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋतुओंमें वसन्त, महीनोंमें मार्गशीर्ष और तिथियोंमें एकादशी हैं; उन सर्वरूपको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सरिताओंमें सागर, पर्वतोंमें हिमालय और सहनशीलोंमें पृथ्वीरूप हैं; उन सर्वरूपको मेरा प्रणाम है। जो पत्रोंमें तुलसीपत्र, लकड़ियोंमें चन्दन और वृक्षोंमें कल्पवृक्ष हैं; उन जगत्पतिको मेरा अभिवादन है। जो पुष्पोंमें पारिजात, अन्नोंमें धान और भक्ष्य पदार्थोंमें अमृत हैं; उन अनेक रूपधारीको मैं सिर झुकाता हूँ। जो गजराजोंमें ऐरावत, पक्षियोंमें गरुड और गौओंमें कामधेनु हैं; उन सर्वरूपको मैं नमन करता हूँ। जो तैजस पदार्थोंमें सुवर्ण, धान्योंमें यव और पशुओंमें सिंह हैं; उन श्रेष्ठ रूपधारीके समक्ष मैं नत होता हूँ। जो यक्षोंमें कुबेर, ग्रहोंमें बृहस्पति और दिक्पालोंमें महेन्द्र हैं; उन श्रेष्ठ परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो शास्त्रोंमें वेदसमुदाय, सदसद्विवेकशील बुद्धिमानोंमें सरस्वती और अक्षरोंमें अकार हैं; उन प्रधान देवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मन्त्रोंमें विष्णुमन्त्र, तीर्थोंमें स्वयं गङ्गा और इन्द्रियोंमें मन

हैं; उन सर्वश्रेष्ठको मेरा नमस्कार है। जो शस्त्रोंमें सुदर्शनचक्र, व्याधियोंमें वैष्णव-ज्वर और तेजोंमें ब्रह्मतेज हैं; उन वरणीय प्रभुको मेरा प्रणाम है। जो बलवानोंमें निषेक-कर्मफलभोग, शीघ्र चलनेवालोंमें मन और गणना करनेवालोंमें काल हैं; उन विलक्षण देवको मैं अभिवादन करता हूँ। जो गुरुओंमें ज्ञानदाता, बन्धुओंमें मातृरूप और मित्रोंमें जन्मदाता—पितृरूप हैं; उन साररूप परमेश्वरको मैं मस्तक झुकाता हूँ। जो शिल्पियोंमें विश्वकर्मा, रूपवानोंमें कामदेव और पत्नियोंमें पतिव्रता हैं; उन नमनीय प्रभुको मेरा अभिवादन है। जो प्रिय प्राणियोंमें पुत्ररूप, मनुष्योंमें नरेश्वर और यन्त्रोंमें शालग्राम हैं; उन विशिष्टको मैं नमस्कार करता हूँ। जो कल्याणबीजोंमें धर्म, वेदोंमें सामवेद और धर्मोंमें सत्यरूप हैं; उन विशिष्टको मैं प्रणाम करता हूँ। जो जलमें शीतलता, पृथ्वीमें गन्ध और आकाशमें शब्दरूपसे विद्यमान हैं; उन वन्दनीयको मैं अभिवादन करता हूँ। जो यज्ञोंमें राजसूययज्ञ और छन्दोंमें गायत्री छन्द हैं तथा जो गन्धर्वोंमें चित्ररथ हैं; उन परम महनीयको मैं सिर झुकाता हूँ। जो गव्य पदार्थोंमें दूधस्वरूप, पवित्रोंमें अग्नि और पुण्य प्रदान करनेवालोंमें स्तोत्र हैं; उन शुभदायकको मैं प्रणिपात करता हूँ। जो तृणोंमें कुशरूप और शत्रुओंमें रोगरूप हैं तथा जो गुणोंमें शान्तरूप हैं; उन विचित्र रूपधारीको मैं नमन करता हूँ। जो तेजोरूप, ज्ञानरूप, सर्वरूप और महान् हैं; उन सबके द्वारा अनिर्वचनीय सर्वव्यापी स्वयं प्रभुको मेरा नमस्कार है। जो सर्वाधारस्वरूपोंमें वायु और नित्यरूपधारियोंमें आत्माके समान हैं तथा जो आकाशकी भाँति व्याप्त हैं; उन सर्वव्यापकको मेरा प्रणाम है। जो वेदोंद्वारा अवर्णनीय हैं, अतः विद्वान् जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं तथा जिनका गुणगान वाक्-शक्तिके बाहर है; भला, उनका स्तवन* करके कौन पार पा सकता है? जिनकी स्तुति करनेमें वेद समर्थ नहीं हैं तथा सरस्वती जड-सी हो जाती हैं, मन-वाणीसे परे उन भगवान्‌का कौन विद्वान् स्तवन कर सकता है? जो शुद्ध तेजःस्वरूप, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रह और अत्यन्त सुन्दर हैं; उन श्याम-रूपधारी प्रभुको मेरा अभिवादन है। जिनके दो भुजाएँ हैं, मुखपर मुरली सुशोभित है, किशोर-अवस्था है, जो आनन्दपूर्वक मुस्करा रहे हैं, गोपाङ्गनाएँ निरन्तर जिनकी ओर निहारा करती हैं; उन्हें मेरा प्रणाम स्वीकार हो। जो रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान हैं और राधाद्वारा दिये गये पानको चबा रहे हैं; उन मनोहर रूपधारी ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो रत्नोंके आभूषणोंसे भलीभाँति सुसज्जित हैं तथा जिनपर पार्षदप्रवर गोपकुमार श्वेत चँवर डुला रहे हैं; उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। जो रमणीय वृन्दावनके भीतर रासमण्डलके मध्य स्थित होकर रासक्रीडाके उल्लाससे समुत्सुक हैं; उन रसिकेश्वरको मेरा प्रणाम है। जो शतशृङ्गकी चोटियोंपर, महाशैलपर, गोलोकमें रत्नपर्वतपर तथा विरजा नदीके रमणीय तटपर विहार करनेवाले हैं; उन्हें मेरा नमस्कार है। जो परिपूर्णतम, शान्त, राधाके प्रियतम, मनको हरण करनेवाले, सत्यरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं, उन अविनाशी श्रीकृष्णको मैं अभिवादन करता हूँ।

जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीकृष्णके इस स्तोत्रका तीनों काल पाठ करता है, वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका दाता हो जाता है। इस स्तोत्रकी कृपासे श्रीहरिमें उसकी भक्ति सुदृढ़ हो जाती है। उसे श्रीहरिकी दासता मिल जाती है और वह इस लोकमें निश्चय ही विष्णु-तुल्य जगत्पूज्य हो जाता है। वह शान्तिलाभ करके समस्त सिद्धोंका ईश्वर हो जाता है और अन्तमें श्रीहरिके परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा भूतलपर अपने तेज और यशसे सूर्यकी तरह प्रकाशित होता है। वह जीवन्मुक्त,

श्रीकृष्णभक्त, सदा नीरोग, गुणवान्, विद्वान्, पुत्रवान् और धनी हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। वह निश्चय ही छहों विषयोंका जानकार, दसों बलोंसे सम्पन्न, मनके सदृश वेगशाली, सर्वज्ञ, सर्वस्व दान करनेवाला और सम्पूर्ण सम्पदाओंका दाता हो जाता है तथा श्रीकृष्णकी कृपासे वह निरन्तर कल्पवृक्षके समान बना रहता है। वत्स! इस प्रकार मैंने इस स्तोत्रका वर्णन कर दिया। अब तुम पुष्करमें जाओ और वहाँ मन्त्र सिद्ध करो। तत्पश्चात् तुम्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी। मुनिश्रेष्ठ! यों श्रीकृष्णकी कृपासे तथा मेरे आशीर्वादसे तुम सुखपूर्वक पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे शून्य करो*।

(अध्याय ३२)

---

* महादेव उवाच—

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम्॥
स्थूलात् स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम्। सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम्॥
साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम्। सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्॥
अतीवकमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम्। करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम्॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम्॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः। नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम्॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान्। तयोः परं स्वयं शश्वत् तं नमामि परात्परम्॥
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया। स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम्॥
तारणं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम्। धारणं सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम्॥
तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु ब्राह्मणः। नक्षत्राणां च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम्॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शंकरः। नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम्॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम्। सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम्॥
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः। नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम्॥
ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः। एकादशी तिथीनां च नमामि सर्वरूपिणम्॥
सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः। वसुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम्॥
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम्। वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम्॥
पुष्पाणां पारिजातश्च शस्यानां धान्यमेव च। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम्॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम्। कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम्॥
तेजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च। यः केशरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम्॥
यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः। दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम्॥
वेदसंघश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती। अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम्॥
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम्। इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम्॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः। तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम्॥
निषेकश्च बलवतां मनश्च शीघ्रगामिनाम्। कालः कलयतां यो हि तं नमामि विलक्षणम्॥
ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु। मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम्॥
शिल्पीनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम्। पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम्॥
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च। शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम्॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः। धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम्॥
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु। शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम्॥

पुष्करमें जाकर परशुरामका तपस्या करना, श्रीकृष्णद्वारा वर-प्राप्ति, आश्रमपर मित्रोंके साथ उनका विजय-यात्रा करना और शुभ शकुनोंका प्रकट होना, नर्मदातटपर रात्रिमें परशुरामको स्वप्नमें शुभ शकुनोंका दिखलायी देना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर भृगुवंशी परशुराम हर्षपूर्वक शिव, दुर्गा तथा भद्रकालीको प्रणाम करके पुष्करतीर्थमें गये और वहाँ मन्त्र सिद्ध करने लगे। उन्होंने एक महीनेतक अन्न-जलका परित्याग कर दिया और भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करते हुए वायुको अवरुद्ध कर दिया। फिर आँखें खोलकर देखा तो उनको आकाश एक अद्भुत तेजसे व्याप्त दिखायी पड़ा। उस तेजसे दसों दिशाएँ उद्दीप्त हो रही थीं और सूर्यका तेज प्रतिहत हो गया था। उस तेजोमण्डलके मध्य उन्हें एक रत्ननिर्मित विमान दीख पड़ा, जिसपर एक अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ पुरुष दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले थे तथा उनका मुख मन्द मुस्कानसे खिल रहा था। परशुरामने उन ईश्वरको दण्डकी भाँति लेटकर सिरसे प्रणाम किया और वर माँगा—'भगवन्! मैं इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे रहित कर दूँ, आपके चरणकमलोंमें मेरी अनपायिनी सुदृढ़ भक्ति हो और मैं निरन्तर आपके पादारविन्दका दास बना रहूँ—यह वर मुझे प्रदान कीजिये।' तब श्रीकृष्ण उन्हें वह वर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये और परशुराम उन

क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः। गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम्॥
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः। पुण्यदानां च यः स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम्॥
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम्। गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्॥
तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान्। सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम्॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथात्मा नित्यरूपिणाम्। आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम्॥
वेदानिर्वचनीयं यत्र स्तोतुं पण्डितः क्षमः। यदनिर्वचनीयं च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती। तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान् स्तोतुमीश्वरः॥
शुद्धतेजःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्। अतीवकमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम्॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा। शश्वद् गोपाङ्गनाभिश्च वीक्ष्यमाणं नमाम्यहम्॥
राधया दत्ततांबूलं भुक्तवन्तं मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम्॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः। पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम्॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम्। रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते। विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम्।
परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्॥
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत्॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत् स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्। तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः। अरोगी गुणवान् विद्वान् पुत्रवान् धनवान् सदा॥
षड्विज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद् ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसम्पदाम्॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद् भवेत् कृष्णप्रसादतः॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं त्वं वत्स गच्छ पुष्करम्। तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात् प्राप्स्यसि वाञ्छितम्॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्। ममाशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः॥

(गणपतिखण्ड ३२। २७—७६)

परात्परको नमस्कार करके अपने आश्रमको लौट आये। उस समय उनका दाहिना अङ्ग फड़कने लगा, जो शुभ मङ्गलोंका सूचक था। रातमें उन्हें वाञ्छासिद्धिको प्रकट करनेवाला उत्तम स्वप्न भी दीख पड़ा। इससे उनका मन रात-दिन प्रसन्न और संतुष्ट रहने लगा। वे स्वजनोंसे सारा वृत्तान्त पूर्णतया बतलाकर आनन्दपूर्वक आश्रममें निवास करने लगे। तदनन्तर महाबली परशुरामने अपने शिष्योंको, पिताके शिष्योंको, भाइयोंको तथा बन्धु-बान्धवोंको बुला-बुलाकर उनके साथ तरह-तरहकी सलाह की और उनसे अपना पूर्वापरका वृत्तान्त कहकर शुभ मुहूर्तमें वे उन्हींके साथ विजययात्राके लिये उद्यत हुए।

उस समय परशुरामको मङ्गल शकुन दिखायी पड़ने लगे और जयकी सूचना देनेवाले शब्द सुनायी दिये। तब उन्होंने मन-ही-मन सबका विचार करके निश्चय कर लिया कि मेरी विजय होगी और शत्रुओंका संहार होगा। यात्राके अवसरपर सहसा मुनिको अपने सामने मयूरकी बोली, सिंहकी गर्जना, घण्टा और दुन्दुभिकी ध्वनि, संगीत, कल्याणकारी नवीन सांकेतिक शब्द और विजयसूचक बादलोंकी गड़गड़ाहट सुनायी पड़ी। उसी समय आकाशवाणी भी हुई कि 'तुम्हारी विजय होगी।' इस तरह अनेक प्रकारके शुभ शब्दोंको सुनते हुए भगवान् परशुरामने यात्रा आरम्भ की। चलते ही उन्होंने अपने आगे ब्राह्मण, वन्दी, ज्योतिषी और भिक्षुकको देखा। फिर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सजी हुई एक पति-पुत्रसम्पन्ना सती नारी हाथमें प्रज्वलित दीपक लिये हुए मुस्कराती हुई सामने आयी। चलते-चलते परशुरामने अपने दाहिनी ओर यात्राके समय मङ्गलकी सूचना देनेवाले शव, शृगाली, जलसे पूर्ण घट, नीलकण्ठ, नेवला, कृष्णसार मृग, हाथी, सिंह, घोड़ा, गैंडा, द्विप, चमरी गाय, राजहंस, चक्रवाक, शुक, कोयल, मोर, खंजन, सफेद चील, चकोर, कबूतर, बगुलोंकी पंक्ति, बत्तख, चातक, गौरैया, बिजली, इन्द्रधनुष, सूर्य, सूर्यकी प्रभा, तुरंतका काटा हुआ मांस, जीवित मछली, शङ्ख, सुवर्ण, माणिक्य, चाँदी, मोती, हीरा, मूँगा, दही, लावा, सफेद धान, सफेद फूल, कुंकुम, पानका पत्ता, पताका, छत्र, दर्पण, श्वेत चँवर, सवत्सा गौ, रथारूढ़ भूपाल, दूध, घी, राशि-राशि अमृत, खीर, शालग्राम, पका हुआ फल, स्वस्तिक, शक्कर, मधु, बिलाव, साँड़, भेड़ा, पर्वतीय चूहा, मेघाच्छन्न सूर्यका उदय, चन्द्रमण्डल, कस्तूरी, पंखा, जल, हल्दी, तीर्थकी मिट्टी, पीली या सफेद सरसों, दूब, ब्राह्मणका बालक और कन्या, मृग, वेश्या, भौंरा, कपूर, पीला वस्त्र, गोमूत्र, गोबर, गौके खुरकी धूलि, गोपदसे चिह्नित गोष्ठ, गौओंका मार्ग (डहर), रमणीय गोशाला, सुन्दर गोगति, भूषण, देवप्रतिमा, प्रज्वलित अग्नि, महोत्सव, ताँबा, स्फटिक, वैद्य, सिंदूर, माला, चन्दन, सुगन्ध, हीरा और रत्न देखा। उन्हें सुगन्धित वायुका आघ्राण और ब्राह्मणोंका शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस प्रकार माङ्गलिक अवसर जानकर वे हर्षपूर्वक आगे

बढ़े और सूर्यास्त होते-होते नर्मदाके तटपर पहुँच गये।

वहाँ उन्हें एक अत्यन्त मनोहर दिव्य अक्षयवट दिखायी दिया। वह अत्यन्त ऊँचा, विस्तारवाला और उत्तम एवं पावन आश्रम-स्थान था। वहाँ सुगन्धित वायु बह रही थी। वहीं पुलस्त्य-नन्दनने तपस्या की थी। वहीं कार्तवीर्यार्जुनके आश्रमके निकट परशुराम अपने गणोंके साथ ठहर गये। वहाँ उन्होंने रातमें पुष्प-शय्यापर शयन किया। थके तो वे थे ही, अतः किंकरोंद्वारा भलीभाँति सेवा किये जानेपर परमानन्दमें निमग्न हो निद्राके वशीभूत हो गये। रात व्यतीत होते-होते भार्गव परशुरामको एक सुन्दर स्वप्न दिखायी दिया, जो वायु, पित्त और कफके प्रकोपसे रहित था और जिसका पहले मनमें विचार भी नहीं किया गया था।

उन्होंने देखा कि मैं हाथी, घोड़ा, पर्वत, अट्टालिका, गौ और फलयुक्त वृक्षपर चढ़ा हुआ हूँ। मुझे कीड़े काट रहे हैं जिससे मैं रो रहा हूँ। मेरे शरीरमें चन्दन लगा है। मैं पीले वस्त्रसे शोभित तथा पुष्पमाला धारण किये हुए हूँ। मेरा सारा शरीर मल-मूत्रसे सराबोर है और उसमें मज्जा और पीब चुपड़ा हुआ है, ऐसी दशामें मैं नौकापर सवार हूँ और उत्तम वीणा बजा रहा हूँ। फिर देखा कि मैं नदीतटपर बड़े-बड़े कमल-पत्रोंपर रखकर दही, घी और मधु-मिश्रित खीर खा रहा हूँ। पुनः देखा कि मैं पान चबा रहा हूँ। मेरे सामने फल, पुष्प और दीपक रखे हुए हैं तथा ब्राह्मण मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। फिर अपनेको बारंबार पके हुए फल, दूध, शक्करमिश्रित गरमा-गरम अन्न, स्वस्तिकके आकारकी बनी हुई मिठाई खाते देखा। पुनः उन्होंने देखा कि मुझे जल-जन्तु, बिच्छू, मछली तथा सर्प काट रहे हैं और मैं भयभीत होकर भाग रहा हूँ। फिर देखा कि मैं चन्द्रमा और सूर्यका मण्डल, पति और पुत्रसे सम्पन्न नारी और मुस्कराते हुए ब्राह्मणको देख रहा हूँ। पुनः अपनेको सुन्दर वेषवाली परम संतुष्ट कन्या तथा संतुष्ट एवं मुस्कानयुक्त ब्राह्मणद्वारा आलिङ्गित होते हुए देखा। फिर देखा कि मैं फल-पुष्पसमन्वित वृक्ष, देवताकी मूर्ति तथा हाथीपर एवं रथपर सवार हुए राजाको देख रहा हूँ। पुनः उन्होंने देखा कि मैं एक ऐसी ब्राह्मणीको देख रहा हूँ, जो पीला वस्त्र धारण किये हुए है, रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित है और घरमें प्रवेश कर रही है। फिर अपनेको शङ्ख, स्फटिक, श्वेत माला, मोती, चन्दन, सोना, चाँदी और रत्न देखते हुए पाया। पुनः भार्गवको हाथी, बैल, श्वेत सर्प, श्वेत चँवर, नीला कमल और दर्पण दिखायी पड़ा। परशुरामने स्वप्नमें अपनेको रथारूढ़, नये रत्नोंसे संयुक्त, मालतीकी मालाओंसे शोभित और रत्नसिंहासनपर स्थित देखा। परशुरामने स्वप्नमें कमलोंकी पंक्ति, भरा हुआ घट, दही, लावा, घी, मधु, पत्तेका छत्र और नाई देखा। भृगुनन्दनने स्वप्नमें बगुलोंकी कतार, हंसोंकी पाँति और मङ्गल-कलशकी पूजा करती हुई व्रती कन्याओंकी पंक्ति देखी। परशुरामने स्वप्नमें उन ब्राह्मणोंको देखा, जो मण्डपमें स्थित होकर शिव और विष्णुकी पूजा कर रहे थे तथा 'जय हो' ऐसा उच्चारण कर रहे थे। फिर परशुरामने स्वप्नमें सुधावृष्टि, पत्तोंकी वर्षा, फलोंकी वृष्टि, लगातार होती हुई पुष्प और चन्दनकी वर्षा, तुरंतका काटा हुआ मांस, जीवित मछली, मोर, श्वेत खंजन, सरोवर, तीर्थ, कबूतर, शुक, नीलकण्ठ, सफेद चील, चातक, बाघ, सिंह, सुरभी, गोरोचन, हल्दी, सफेद धानका विशाल पर्वत, प्रज्वलित अग्नि, दूब, समूह-के-समूह देव-मन्दिर, पूजित शिवलिङ्ग और पूजा की हुई शिवकी मृण्मयी मूर्तिको देखा। परशुरामने स्वप्नमें जौ और गेहूँके आटेकी पूड़ी और लड्डू देखा और उन्हें बारंबार खाया। फिर अकस्मात्

अपनेको शस्त्रसे घायल और जंजीरसे बंधा हुआ देखकर उनकी नींद टूट गयी और वे प्रात:काल श्रीहरिका स्मरण करते हुए उठ बैठे। इस स्वप्नसे उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने अपना प्रात:कालिक नित्य कर्म सम्पन्न किया और मनमें ऐसा समझ लिया कि निश्चय ही सारे शत्रुओंको जीत लूँगा।

(अध्याय ३३)

परशुरामका कार्तवीर्यके पास दूत भेजना, दूतकी बात सुनकर राजाका युद्धके लिये उद्यत होना और रानी मनोरमासे स्वप्नदृष्ट अपशकुनका वर्णन करना, रानीका उन्हें परशुरामकी शरण ग्रहण करनेको कहना, परंतु राजाका मनोरमाको समझाकर युद्धयात्राके लिये उद्यत होना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर भृगुवंशी परशुरामने प्रात:कालिक नित्यकर्म समाप्त करके भाई-बन्धुओंके साथ परामर्श किया और कार्तवीर्यके आश्रमपर दूत भेजा। उस दूतने शीघ्र ही जाकर राजाधिराज कार्तवीर्यसे कहा। उस समय राजा मन्त्रियोंसे घिरे हुए राजसभामें बैठे थे।

परशुरामका दूत बोला—महाराज! नर्मदातटके निकट अक्षयवटके नीचे भृगुवंशी परशुराम भाइयोंसहित पधारे हुए हैं। वे इक्कीस बार पृथ्वीको राजाओंसे शून्य करेंगे। अत: आप वहाँ चलिये अथवा भाई-बन्धुओंके साथ युद्ध कीजिये। इतना कहकर परशुरामका दूत उनके पास लौट गया। इधर राजा कवच धारण करके रण-यात्राके लिये उद्यत हुआ। तब महारानी मनोरमाने अपने प्राणपतिको युद्धमें जानेके लिये उद्यत देख उसे रोक दिया और अपने पास ही बैठा लिया। मुने! मनोरमाको देखकर राजाके नेत्र और मुख प्रसन्नतासे खिल उठे। फिर तो उसने सभाके बीच रानीसे अपने मनकी बात कही।

कार्तवीर्यार्जुन कहने लगा— प्रिये! जमदग्निके महान् पराक्रमी पुत्र परशुराम भाइयोंके साथ नर्मदा-तटपर ठहरे हुए हैं। वे मुझे युद्धके लिये ललकार रहे हैं। उन्हें शंकरजीसे शस्त्र और श्रीहरिका मन्त्र तथा कवच प्राप्त हो गया है; अत: वे इक्कीस बार भूमिको भूपालोंसे हीन कर देना चाहते हैं। इस समाचारसे मेरे प्राण काँप उठे हैं, मन बारंबार क्षुब्ध हो रहा है और मेरा बायाँ अङ्ग निरन्तर फड़क रहा है। प्रिये! मैंने एक स्वप्न भी देखा है, सुनो।

मैंने देखा है—मैं तेलसे सराबोर हूँ, लाल वस्त्र धारण किये हुए हूँ, शरीरपर लाल चन्दन लगा है, लोहेके आभूषणोंसे भूषित हूँ, अड़हुलके फूलोंकी माला पहने हूँ और गधेपर चढ़कर हँस रहा हूँ तथा बुझे हुए अंगारोंकी राशिसे क्रीड़ा कर रहा हूँ। पतिव्रते! पृथ्वीपर अड़हुलके पुष्प बिखरे हुए हैं और वह राखसे आच्छादित हो गयी है। आकाश चन्द्रमा और सूर्यसे रहित होकर संध्याकालीन लालिमासे व्याप्त हो गया है। मैंने एक विधवा स्त्रीको देखा, जो लाल वस्त्र पहने थी, केश खुले थे, नाक कट गयी थी और वह अट्टहास करती हुई नाच रही थी। महारानी! मैंने एक चिता देखी, जिसपर बाण बिछे थे और वह अग्निसे रहित एवं भस्मसे संयुक्त थी। फिर राखकी वर्षा, रक्तकी वर्षा और अंगारोंकी वर्षा होते हुए देखा। पृथ्वी पके हुए ताड़के फलोंसे आच्छादित और हड्डियोंसे संयुक्त थी। फिर खोपड़ियोंकी ढेरी दीख पड़ी, जो कटे हुए बालों और नखोंसे युक्त थी। फिर रातके समय नमकका पहाड़, कौड़ियोंकी ढेरी और धूल तथा तेलकी कन्दरा दृष्टिगोचर हुई। फिर फूलोंसे लदे हुए

अशोक और करवीरके वृक्ष दीख पड़े। वहीं ताड़के वृक्ष भी थे, जिनमें फल लगे थे और पटापट गिर रहे थे। यह भी देखा कि मेरे हाथसे भरा हुआ कलश गिर पड़ा और चकनाचूर हो गया तथा आकाशसे चन्द्रमण्डल गिर रहा है। पुनः आकाशसे भूतलपर गिरते हुए सूर्यमण्डलको तथा उल्कापात, धूमकेतु और सूर्य एवं चन्द्रमाके ग्रहणको देखा। फिर एक ऐसे भयानक पुरुषको सामनेसे आते हुए देखा, जिसका आकार बेडौल था, मुख विकराल था और जिसके शरीरपर वस्त्र नहीं था। रातमें मैंने यह भी देखा कि एक बारह वर्षकी अवस्थावाली युवती, जो वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित थी, रुष्ट होकर मेरे घरसे बाहर जा रही है। (जाते समय उसने कहा—) 'राजेन्द्र! आप शोकपूर्ण चित्तसे बोलते हैं; अतः मैं आपके घरसे वनको चली जाऊँगी; इसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।' मैंने देखा कि क्रुद्ध ब्राह्मण, संन्यासी और गुरु मुझे शाप दे रहे हैं और दीवालपर चित्रित पुत्तलिकाएँ नाच रही हैं। रातमें मैंने देखा कि चञ्चल गीधों, कौओं और भैंसोंका समूह मुझे पीड़ा पहुँचा रहा है। महारानी! मैंने तेल, तेलीद्वारा घुमाया जाता हुआ कोल्हू और पाशधारी दिगम्बरोंको देखा। मैंने रातमें देखा कि मेरे घरमें परमानन्ददायक विवाहोत्सव मनाया जा रहा है, जिसमें सभी गायक गीत गा रहे हैं और नाच रहे हैं। रातमें देखा कि लोग रमण कर रहे हैं, परस्पर खींचातानी कर रहे हैं और कौवे तथा कुत्ते लड़ रहे हैं। कामिनि! रातमें मोटक, पिण्ड, शवसंयुक्त श्मशान, लाल वस्त्र और सफेद वस्त्र भी दीखे हैं। शोभने! मैंने देखा कि एक विधवा स्त्री, जो काले रंगकी थी और काला वस्त्र पहने हुए थी तथा जिसके बाल खुले हुए थे, नंगी होकर मेरा आलिङ्गन कर रही है। प्रिये! नाई मेरे सिर तथा दाढ़ीके बाल छील रहा है और वक्षःस्थलपर नखोंकी खरोंच लगी है; रातमें मैंने ऐसा भी देखा है। सुन्दरि! पादुका, चमड़ेकी रस्सियोंकी बहुत बड़ी राशि और कुम्हारके चाकको भूमिपर घूमते हुए देखा। सुव्रते! रातमें देखा कि आँधीने एक सूखे पेड़को झकझोरकर उखाड़ दिया है और वह वृक्ष पुनः उठकर खड़ा हो गया है तथा बिना सिरका धड़ चक्कर काट रहा है। श्रेष्ठे! एक गुँथी हुई मुण्डोंकी माला, जिसमें अत्यन्त भयंकर दाँत दीख रहे थे तथा जिसे आँधीने चूर-चूर कर दिया था, मुझे दीख पड़ी। रातमें मैंने यह भी देखा कि झुंड-के-झुंड भूत-प्रेत, जिनके बाल खुले हुए थे और जो मुखसे आग उगल रहे थे—मुझे लगातार भयभीत कर रहे हैं। रातमें मैंने जला हुआ जीव, झुलसा हुआ वृक्ष, व्याधिग्रस्त मनुष्य और अङ्गहीन शूद्रको भी देखा है। रातमें मैंने यह भी देखा कि सहसा घर, पर्वत और वृक्ष गिर रहे हैं तथा बारंबार वज्रपात हो रहा है। रातमें घर-घरमें कुत्ते और सियार निश्चितरूपसे बारंबार रो रहे थे, मुझे यह भी दिखायी पड़ा है। मैंने एक पुरुषको देखा—जो दिगम्बर था, जिसके बाल बिखरे थे और जो नीचे मस्तक तथा पैर ऊपर करके पृथ्वीपर घूम रहा था। उसकी आकृति और बोली विकृत थी। फिर प्रातःकाल ग्रामके अधिदेवताका रुदन सुनकर मैं जाग पड़ा। अब बतलाओ, इसका क्या उपाय है। राजाकी बात सुनकर मनोरमाका हृदय दुःखी हो गया। वह रोती हुई राजाधिराज कार्तवीर्यसे गद्गद वाणीमें बोली।

मनोरमाने कहा—हे नाथ! आप रमण करनेवालोंमें उत्तम, समस्त महीपालोंमें श्रेष्ठ और मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। प्राणेश्वर! मेरा शुभकारक वचन सुनिये। जमदग्निनन्दन महाबली भगवान् परशुराम नारायणके अंश हैं। ये सृष्टिका संहार करनेवाले जगदीश्वर शिवके शिष्य हैं। जिनकी ऐसी प्रतिज्ञा है कि मैं इक्कीस बार

पृथ्वीको भूपालोंसे शून्य कर दूँगा, उनके साथ आप युद्ध न छेड़िये। पापी रावणको जीतकर जो आप अपनेको शूरवीर मानते हैं, (यह आपका भ्रम है; क्योंकि) उसे आपने नहीं जीता है, बल्कि वह अपने पापसे पराजित हुआ है; क्योंकि जो धर्मकी रक्षा नहीं करता, उसका भूतलपर कौन रक्षक हो सकता है? वह मूर्ख स्वयं नष्ट हो जाता है और वह जीते हुए भी मृतकके समान है। जो धर्मके तथा शुभाशुभ कर्मके साक्षी और आत्माराम हैं, वे निरन्तर अपने अंदर वर्तमान हैं; परंतु आपकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी है; अतः आप उन्हें नहीं देखते हैं। नरेश! उत्तम धर्मात्माओंके जो-जो स्त्री-पुत्र आदि तथा समस्त ऐश्वर्यकी वस्तुएँ हैं, वे सभी जलके बुलबुलेके सदृश अनित्य और विनाशशील हैं। इसीलिये इस भारतमें संतलोग संसारको स्वप्न-सदृश मानकर निरन्तर धर्मका ध्यान करते हैं और भक्तिपूर्वक तपस्यामें रत रहते हैं। राजन्! मालूम होता है, दत्तात्रेयजीने जो ज्ञान दिया था, वह सब आप भूल गये। यदि है तो फिर आपका मन ब्राह्मणकी हत्या करनेमें कैसे प्रवृत्त हुआ? आप तो मनोविनोदके लिये शिकार खेलने गये थे। वहाँ ब्राह्मणके आश्रममें ठहरकर आपने अपूर्व मिष्टान्नका भोजन किया और व्यर्थ ही ब्राह्मणको मार डाला। जो गुरु, ब्राह्मण और देवताका अपमान करता है, उसके इष्टदेव उसपर रुष्ट हो जाते हैं और विपत्ति उसे आ घेरती है। अतः राजेन्द्र! आप दत्तात्रेयजीके चरणकमलोंका स्मरण कीजिये; क्योंकि गुरु-भक्ति सबके सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाश करनेवाली है। अब आप गुरुदेवकी भलीभाँति अर्चना करके उन भृगुनन्दनकी शरण ग्रहण कीजिये। परम बुद्धिमान् राजा कार्तवीर्यने मनोरमाकी बात सुनकर उसे समझाया और पुनः रानीको उत्तर दिया।

कार्तवीर्यार्जुनने कहा—कान्ते! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मैंने सुन लिया। अब मैं जो कहता हूँ, उसे श्रवण करो। शोकपीड़ित लोगोंके वचन सभाओंमें प्रशंसनीय नहीं माने जाते। सुन्दरी! कर्मभोगके योग्य काल आनेपर सुख, दुःख, भय, शोक, कलह और प्रेम—ये सभी होते रहते हैं; क्योंकि काल राज्य देता है; काल मृत्यु और पुनर्जन्मका कारण होता है, काल संसारकी सृष्टि करता है, काल ही पुनः उसका संहार करता है और काल ही पालन करता है। काल भगवान् जनार्दनका स्वरूप है; परंतु श्रीकृष्ण उस कालके भी काल और विधाताके भी ब्रह्मा हैं। सृष्टिका आविर्भाव और तिरोधान उन्हींकी आज्ञासे होता है। मनुष्यके सारे कार्य उन्हींकी आज्ञासे होते हैं, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं होता। महाबली भगवान् परशुराम नारायणके अंश हैं। यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं इक्कीस बार पृथ्वीको राजाओंसे शून्य कर दूँगा तो उनकी वह प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हो सकती। सुव्रते! साथ ही मैं यह निश्चित रूपसे जानता हूँ कि मैं उनका वध्य हूँ। तब भला, भविष्यकी सारी बातें जानकर भी मैं उनकी शरणमें कैसे जा सकता हूँ? क्योंकि प्रतिष्ठित पुरुषोंकी अपकीर्ति मृत्युसे भी बढ़कर दुःखदायिनी होती है। इतना कहकर सम्राट् कार्तवीर्यने समरभूमिमें जानेके लिये उद्यत हो बाजा बजवाया और माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करवाये। वह असंख्य राजाओंको, तीन लाख राजाधिराजोंको, महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न एक सौ अक्षौहिणी सेनाओंको तथा असंख्यों घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही और रथोंको साथ लेकर रण-यात्राके लिये तैयार हुआ। उसे कवच और बाणसहित अक्षय धनुष धारण करके यात्राके लिये समुत्सुक देख साध्वी मनोरमा स्तब्ध हो गयी। (अध्याय ३४)

राजाको युद्धके लिये उद्यत देख मनोरमाका योगद्वारा शरीर-त्याग, राजाका विलाप और आकाशवाणी सुनकर उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करना, युद्धयात्राके समय नाना प्रकारके अपशकुन देखना, कार्तवीर्य और परशुरामका युद्ध तथा कार्तवीर्यका वध, नारायणद्वारा शिव-कवचका वर्णन

नारायण कहते हैं—मुने! मनोरमाने अपने स्वामीके मुखसे भविष्यकी जो-जो बातें सुनीं, उन्हें मनमें धारण कर लिया और यह समझ लिया कि ये बातें अवश्य सत्य होंगी; अत: उसने उसी क्षण अपने प्राणनाथको अपनी छातीसे लगा लिया और पुत्रों, बान्धवों तथा अपने भृत्योंको आगे करके वह भगवच्चरणोंका ध्यान करने लगी। फिर उसने योगद्वारा षट्चक्रका भेदन करके वायुको मूर्धामें स्थापित किया और चञ्चल मनको जलके बुलबुलेके सदृश क्षणभङ्गुर विषयोंसे खींचकर, ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रदलसंयुक्त कमलपर स्थापित करके उसे ज्ञानद्वारा निष्कल ब्रह्ममें बाँध दिया। तत्पश्चात् निर्मूल एवं पुनर्जन्मरहित द्विविध कर्मका परित्याग करके उसने वहीं प्राण त्याग दिये; परंतु प्राणोंसे अधिक प्रिय राजाको नहीं छोड़ा।

तदनन्तर राजा विविध भाँतिसे करुण विलाप करके फूट-फूटकर रोने लगे। राजाके विलापको सुनकर इस प्रकार आकाशवाणी हुई—'महाराज! शान्त हो जाओ, क्यों रो रहे हो? तुम तो दत्तात्रेयकी कृपासे बड़े-बड़े ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो; अत: सारे संसारको, जो रमणीय दीख रहा है, जलके बुलबुलेके सदृश क्षणभङ्गुर समझो। वह साध्वी मनोरमा तो लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई थी, अत: वह लक्ष्मीके वासस्थानको चली गयी। अब तुम भी रणभूमिमें युद्ध करके वैकुण्ठमें जाओ।' आकाशवाणीके इस वचनको सुनकर नरेशने शोकका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् चन्दनकी लकड़ीसे दिव्य चिता तैयार की और पुत्रद्वारा अग्निसंस्कार कराकर उसका दाह कराया। फिर मनोरमाके पुण्यके निमित्त हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, भाँति-भाँतिके वस्त्र और अनेक तरहके अन्यान्य दान दिये। मुने! उस अवसरपर कार्तवीर्यके आश्रममें सर्वत्र निरन्तर यही शब्द होता था कि 'दान दो, दान दो और खाओ, खाओ'। उस समय राजाद्वारा अधिकृत कोषोंमें जो-जो धन मौजूद था, उसे उसने मनोरमाके पुण्यके निमित्त हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिया। तदनन्तर असंख्य बाजों तथा सैन्यसमूहोंको साथ लेकर राजा दु:खी हृदयसे समरभूमिके लिये प्रस्थित हुआ। आगे बढ़नेपर यद्यपि राजाको प्रत्येक मार्गमें अमङ्गलके ही दर्शन हुए तथापि वह रणक्षेत्रकी ओर ही बढ़ता गया; पुन: राजधानीको नहीं लौटा। राजाको मार्गमें एक नग्न स्त्री मिली, जिसके बाल बिखरे थे, नाक कटी थी और वह रो रही थी। दूसरी विधवा भी मिली, जो काला वस्त्र पहने थी। आगे मुखदुष्टा, योनिदुष्टा, रोगिणी, कुट्टनी, पति-पुत्रसे विहीन, डाकिनी, कुलटा, कुम्हार, तेली, व्याघ्र, सर्पद्वारा जीविका चलानेवाला (सँपेरा), कुत्सित वस्त्र, अत्यन्त रूखा शरीर, नंगा, काषाय-वस्त्रधारी, चरबी बेचनेवाला, कन्या-विक्रयी, चितामें जलता हुआ शव, बुझे हुए अङ्गारोंवाली राख, सर्पसे डँसा हुआ मनुष्य, साँप, गोह, खरगोश, विष, श्राद्धके लिये पकाया हुआ पाक, पिण्ड, मोटक, तिल, देवमूर्तियोंपर चढ़े हुए धनसे जीवन-निर्वाह करनेवाला ब्राह्मण, वृषवाह (बैलपर सवारी करनेवाला अथवा बैलको जोतनेवाला), शूद्रके श्राद्धान्नका भोजी, शूद्रका रसोइया, शूद्रका पुरोहित, गाँवका पुरोहित, कुशकी पुत्तलिका, मुर्दा जलानेवाला, खाली घड़ा, फूटा घड़ा, तेल, नमक,

हड्डी, रुई, कछुआ, धूल, भूँकता हुआ कुत्ता, दाहिनी ओर भयंकर शब्द करता हुआ सियार, जटा, हजामत, कटा हुआ बाल, नख, मल, कलह, विलाप करता हुआ मनुष्य, अमङ्गलसूचक विलाप करनेवाला तथा शोककारक रुदन करनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, चोर मनुष्य, हत्यारा, कुलटाका पति और पुत्र, कुलटाका अन्न खानेवाला, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी वस्तुओं तथा धनका अपहरण करनेवाला, दान देकर छीन लेनेवाला, डाकू, हिंसक, चुगलखोर, दुष्ट, पिता-मातासे विरक्त, ब्राह्मण और पीपलका विघातक, सत्यका हनन करनेवाला, कृतघ्न, धरोहर हड़प लेनेवाला मनुष्य, विप्रद्रोही, मित्रद्रोही, घायल, विश्वासघातक, गुरु, देवता और ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला, अपने अङ्गोंको काटनेवाला, जीवहिंसक, अपने अङ्गसे हीन, निर्दयी, व्रत-उपवाससे रहित, दीक्षाहीन, नपुंसक, कुष्ठरोगी, काना, बहरा, पुक्कस (जातिविशेष), कटे हुए लिङ्गवाला (नागा), मदिरासे मतवाला, मदिरा, पागल, खून उगलनेवाला, भैंसा, गदहा, मूत्र, विष्ठा, कफ, मनुष्यकी सूखी खोपड़ी, प्रचण्ड आँधी, रक्तकी वृष्टि, बाजा, वृक्षका गिराया जाना, भेड़िया, सूअर, गीध, बाज, कङ्क (एक मांसाहारी पक्षी), भालू, पाश, सूखी लकड़ी, कौआ, गन्धक, पहले-पहल दान लेनेवाला ब्राह्मण (महापात्र), तन्त्र-मन्त्रसे जीविका चलानेवाला, वैद्य, रत्न-पुष्प, औषध, भूसी, दूषित समाचार, मृतककी बातचीत, ब्राह्मणका दारुण शाप, दुर्गन्धयुक्त वायु और दुःशब्द आदि राजाके सामने आये। राजाका मन दूषित हो गया, प्राण निरन्तर क्षुब्ध रहने लगे, बायाँ अङ्ग फड़कने लगा और शरीरमें जडता आ गयी तथापि राजाको युद्धमें ही अपना मङ्गल दीख रहा था; अतः वह निःशङ्क हो सारी सेनाओंको साथ लेकर युद्धक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ भृगुवंशी परशुरामको सामने देखकर वह तुरंत रथसे उतर पड़ा और भक्तिपूर्वक बड़े-बड़े राजाओंके साथ दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया। तब परशुरामने 'तुम स्वर्गमें जाओ' ऐसा राजाको उसका अभीष्ट आशीर्वाद दिया। वह उनके मनोऽनुकूल ही हुआ; क्योंकि ब्राह्मणके आशीर्वचन दुर्लङ्घ्य होते हैं। तदनन्तर राजराजेश्वर कार्तवीर्य उसी क्षण राजाओंसहित परशुरामको नमस्कार करके तुरंत ही रथपर, जो नाना प्रकारकी युद्ध-सामग्रीसे सम्पन्न था, सवार हुआ। फिर उसने सहसा दुन्दुभि, मुरज आदि

तरह-तरहके बाजे बजवाये और ब्राह्मणोंको धन दान किया। तब वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परशुराम राजाओंकी उस सभामें राजाधिराज कार्तवीर्यसे हितकारक, सत्य एवं नीतियुक्त वचन बोले।

परशुरामने कहा—अये धर्मिष्ठ राजेन्द्र! तुम तो चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए हो और विष्णुके अंशभूत बुद्धिमान् दत्तात्रेयके शिष्य हो। तुम स्वयं विद्वान् हो और वेदज्ञोंके मुखसे तुमने वेदोंका श्रवण भी किया है; फिर भी तुम्हें इस समय सज्जनोंको विडम्बित करनेवाली दुर्बुद्धि कैसे उत्पन्न हो गयी? तुमने पहले लोभवश निरीह ब्राह्मणकी हत्या कैसे कर डाली? जिसके कारण सती-साध्वी ब्राह्मणी शोक-संतप्त होकर पतिके

साथ सती हो गयी। भूपाल! इन दोनोंके वधसे परलोकमें तुम्हारी क्या गति होगी? यह सारा संसार तो कमलके पत्तेपर पड़े हुए जलकी बूँदकी तरह मिथ्या ही है। सुयश हो अथवा अपयश, इसकी तो कथामात्र अवशिष्ट रह जाती है। अहो! सत्पुरुषोंकी दुष्कीर्ति हो, इससे बढ़कर और क्या विडम्बना होगी? कपिला कहाँ गयी, तुम कहाँ गये, विवाद कहाँ गया और मुनि कहाँ चले गये; परंतु एक विद्वान् राजाने जो कर्म कर डाला, वह हलवाहा भी नहीं कर सकता। मेरे धर्मात्मा पिताने तो तुम-जैसे नरेशको उपवास करते देखकर भोजन कराया और तुमने उन्हें वैसा फल दिया! राजन्? तुमने शास्त्रोंका अध्ययन किया है, तुम प्रतिदिन ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान देते हो और तुम्हारे यशसे सारा जगत् व्याप्त है। फिर बुढ़ापेमें तुम्हारी अपकीर्ति कैसे हुई? प्राचीन कालके वन्दीगण ऐसा कहते हैं कि भूतलपर कार्तवीर्यार्जुनके समान दाता, सर्वश्रेष्ठ, धर्मात्मा, यशस्वी, पुण्यशाली और उत्तम बुद्धिसम्पन्न न कोई हुआ है और न आगे होगा। जो पुराणोंमें विख्यात है, उसकी ऐसी अपकीर्ति! आश्चर्य है। राजन्! प्राणियोंके लिये दुर्वाक्य तीखे अस्त्रसे भी बढ़कर दुस्सह होता है; इसीलिये संकट-कालमें भी सत्पुरुषोंके मुखसे दुर्वचन नहीं निकलते। राजेन्द्र! मैं तुमपर दोषारोपण नहीं कर रहा हूँ, बल्कि सच्ची बात कह रहा हूँ; अतः इस राजसभामें तुम मुझे उत्तर दो। इस सभामें सूर्य, चन्द्र और मनुके वंशज विद्यमान हैं; अतः सभामें तुम ठीक-ठीक बतलाओ, जिसे तुम्हारे पितर और देवगण भी सुनें। साथ ही सत्-असत्को कहनेमें समर्थ ये सारे नरेश भी श्रवण करें; क्योंकि समदृष्टि रखनेवाले सत्पुरुष लोग पक्षपातकी बात नहीं कहते। युद्धस्थलमें इतना कहकर परशुराम चुप हो गये। तब बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् राजाने कहना आरम्भ किया।

कार्तवीर्यार्जुनने कहा—हे राम! आप श्रीहरिके अंश, हरिके भक्त और जितेन्द्रिय हैं। मैंने जिनके मुखसे धर्म श्रवण किया है, आप उनके गुरुके भी गुरु हैं। जो कर्मवश ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म-चिन्तन करता है और अपने धर्ममें तत्पर एवं शुद्ध है, इसीलिये वह ब्राह्मण कहलाता है। जो मनन करनेके कारण नित्य बाहर-भीतर कर्म करता रहता है, सदा मौन धारण किये रहता है और समय आनेपर बोलता है, वह मुनि कहलाता है। जिसकी सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें, घर और जंगलमें तथा कीचड़ और अत्यन्त चिकने चन्दनमें समताकी भावना है, वह योगी कहा जाता है। जो सम्पूर्ण जीवोंमें समत्व-बुद्धिसे विष्णुकी भावना करता है और श्रीहरिकी भक्ति करता है, वह हरिभक्त कहा जाता है*। ब्राह्मणोंका धन तप है। चूँकि तपस्या कल्पतरु और कामधेनुके समान है, इसीलिये उनकी निरन्तर तपमें इच्छा लगी रहती है। रजोगुणी पुरुष कर्मोंके रागवश राजसिक कार्य करता है और रागान्ध होकर रजोगुणी कार्योंमें लगा रहता है; इसी कारण वह राजा कहा जाता है। मुने! रागवश मैंने कामधेनुकी याचना की थी; अतः मुझ अनुरागी क्षत्रियका इसमें कौन-सा अपराध हुआ? फिर भी, आपके पिताने महान्

---

* कर्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनम् । स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते॥
अन्तर्बहिश्च मननात् कुरुते कर्म नित्यशः । मौनी शश्वद् वदेत् काले यो हि स मुनिरुच्यते॥
स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये पङ्के सुस्निग्धचन्दने । समता भावना यस्य स योगी परिकीर्तितः॥
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत् समताधिया । हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः॥
(गणपतिखण्ड ३५। ७०—७३)

बल-पराक्रमसे सम्पन्न बहुत-से भूपालोंका वध कर डाला। इस समय यहाँ शिशु-अवस्थावाले राजकुमार ही आये हैं। आपने सम्पूर्ण पृथ्वीको इक्कीस बार भूपालोंसे शून्य कर देनेके लिये जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन कीजिये। युद्ध करना तो क्षत्रियोंका धर्म ही है। युद्धमें मृत्युको प्राप्त हो जाना उनके लिये निन्दित नहीं है; परंतु ब्राह्मणोंकी रण-स्पृहा लोक और वेद—दोनोंमें विडम्बनाकी पात्र है। वाणी ही जिनका बल और तप ही जिनका धन है, उन ब्राह्मणोंकी शान्ति ही प्रत्येक युगमें स्वस्तिकारक कर्म है। युद्ध करना ब्राह्मणका धर्म नहीं है। शान्तिपरायण ब्राह्मण युद्धके लिये उद्योगशील हो, ऐसा तो न देखनेमें ही आया है और न सुना ही गया है। भगवान् नारायणके विद्यमान रहते यह दूसरी तरहका उलट-फेर कैसे हो गया?

रणाङ्गणमें यों कहकर राजेन्द्र कार्तवीर्य शान्त हो गया। उसके उस वचनको सुनकर सभी लोग मौन हो गये। तदनन्तर परशुरामके सभी भाई, जो बड़े शूरवीर तथा हाथोंमें अत्यन्त तीखे शस्त्र धारण किये हुए थे, उनकी आज्ञासे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। तब जो स्वयं मङ्गलस्वरूप तथा मङ्गलोंका आश्रयस्थान था, उस महाबली मत्स्यराजने भी उन सबको युद्धोन्मुख देखकर युद्ध करना आरम्भ किया। उस राजेन्द्रने बाणोंका जाल बिछाकर उन सभीको रोक दिया। तब जमदग्निके पुत्रोंने उस बाण-समूहको छिन्न-भिन्न कर दिया। मुने! राजाने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान दिव्यास्त्र चलाया; परंतु मुनियोंने माहेश्वर-अस्त्रके द्वारा खेल-ही-खेलमें उसे काट दिया। पुनः मुनियोंने दिव्यास्त्रद्वारा राजाके बाणसहित धनुष, रथ, सारथि और कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं। इस प्रकार राजाको शस्त्रहीन देखकर मुनियोंको महान् हर्ष हुआ। तब उन्होंने मत्स्यराजका वध करनेकी इच्छासे शिवजीका त्रिशूल हाथमें उठाया। त्रिशूल चलाते समय आकाशवाणी हुई—'विप्रवरो! शिवजीका यह त्रिशूल अमोघ है, इसे मत चलाओ; क्योंकि मत्स्यराजके गलेमें सर्वाङ्गोंकी रक्षा करनेवाला शिवजीका दिव्य कवच बँधा है, जिसे पूर्वकालमें दुर्वासाने दिया था। अतः पहले राजासे उस प्राण-प्रदान करनेवाले कवचको माँग लो।' मुने! तदनन्तर परशुरामने त्रिशूल चलाकर राजापर चोट की, परंतु राजाके शरीरसे टकराकर उस त्रिशूलके सौ टुकड़े हो गये। तब आकाशवाणी सुनकर महान् पराक्रमी जमदग्निनन्दन परशुरामने शृङ्गधारी संन्यासीका वेष धारण करके राजासे कवचकी याचना की। राजाने 'ब्रह्माण्ड-विजय' नामक वह उत्तम कवच उन्हें दे दिया। उस कवचको लेकर परशुरामने पुनः त्रिशूलसे ही प्रहार किया। उसके आघातसे मत्स्यराज, जो चन्द्रवंशमें उत्पन्न, गुणवान् और महाबली था, जिसके मुखकी कान्ति सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान थी, भूतलपर गिर पड़ा।

नारदने कहा—महाभाग नारायण! मत्स्यराजने शिवजीके जिस कवचको धारण किया था, उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मुझे कौतूहल हो रहा है।

नारायण बोले—विप्रवर! महात्मा शंकरके उस 'ब्रह्माण्डविजय' नामक कवचका, जो सर्वाङ्गकी रक्षा करनेवाला है, वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालमें दुर्वासाने बुद्धिमान् मत्स्यराजको सम्पूर्ण पापोंका समूल नाश करनेवाला षडक्षर-मन्त्र बतलाकर इसे प्रदान किया था। यदि सिद्धि प्राप्त हो जाय तो इस कवचके शरीरपर स्थित रहते अस्त्र-शस्त्रके प्रहारके समय, जलमें तथा अग्निमें प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती—इसमें संशय नहीं है। जिसे पढ़कर एवं धारण करके दुर्वासा सिद्ध होकर लोकपूजित हो गये, जिसके पढ़ने और धारण करनेसे जैगीषव्य महायोगी कहलाने लगे। जिसे धारण करके वामदेव, देवल, स्वयं च्यवन,

अगस्त्य और पुलस्त्य विश्ववन्द्य हो गये। '**ॐ नमः शिवाय**' यह सदा मेरे मस्तककी रक्षा करे। '**ॐ नमः शिवाय स्वाहा**' यह सदा ललाटकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवाय स्वाहा**' सदा नेत्रोंकी रक्षा करे। **ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवाय नमः** ' मेरी नासिकाकी रक्षा करे। '**ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा**' सदा कण्ठकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा**' सदा कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा**' सदा दाँतकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा**' सदा मेरे ओठकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा**' सदा केशोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा**' सदा छातीकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रुद्राय स्वाहा**' सदा नाभिकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा**' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा**' सदा भौंहोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा**' सदा पार्श्वभागकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं ईश्वराय स्वाहा**' सदा मेरे उदरकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा**' सदा भुजाओंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा**' मेरे हाथोंकी रक्षा करे। '**ॐ महेश्वराय रुद्राय नमः**' सदा मेरे नितम्बकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा**' सदा पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा**' सदा सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्वमें '**भूतेश**' मेरी रक्षा करें। अग्निकोणमें '**शंकर**' रक्षा करें। दक्षिणमें '**रुद्र**' तथा नैर्ऋत्यकोणमें **स्थाणु** मेरी रक्षा करें। पश्चिममें '**खण्डपरशु**', वायव्यकोणमें '**चन्द्रशेखर**', उत्तरमें '**गिरिश**' और ईशानकोणमें स्वयं '**ईश्वर**' रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें '**मृड**' और अधोभागमें स्वयं '**मृत्युञ्जय**' सदा रक्षा करें। जलमें, स्थलमें, आकाशमें, सोते समय अथवा जागते रहनेपर भक्तवत्सल '**पिनाकी**' सदा मुझ भक्तकी स्नेहपूर्वक रक्षा करें।

वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे इस परम अद्भुत कवचका वर्णन कर दिया। इसके दस लाख जपसे ही सिद्धि हो जाती है, यह निश्चित है। यदि यह कवच सिद्ध हो जाय तो वह निश्चय ही रुद्र-तुल्य हो जाता है। वत्स! तुम्हारे स्नेहके कारण मैंने वर्णन कर दिया है, तुम्हें इसे किसीको नहीं बतलाना चाहिये; क्योंकि यह काण्वशाखोक्त कवच अत्यन्त गोपनीय तथा परम दुर्लभ है। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय—ये सभी इस कवचकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। इस कवचकी कृपासे मनुष्य निश्चय ही जीवन्मुक्त, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी और मनके समान वेगशाली हो जाता है। इस कवचको बिना जाने जो भगवान् शंकरका भजन करता है, उसके लिये एक करोड़ जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।* (अध्याय ३५)

---

* नारायण उवाच—

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शंकरस्य महात्मनः । ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम्॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते । दत्त्वा षडक्षरं मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम्॥
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् । अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः॥
यद् धृत्वा पठनात् सिद्धो दुर्वासा विश्वपूजितः । जैगीषव्यो महायोगी पठनाद् धारणाद् यतः॥
यद् धृत्वा वामदेवश्च देवलश्च्यवनः स्वयम् । अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः॥
ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदाऽवतु । ॐ नमः शिवायेति च स्वाहा भालं सदाऽवतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदाऽवतु । ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम्॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदाऽवतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदाऽवतु । ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदाऽवतु॥

मत्स्यराजके वधके पश्चात् अनेकों राजाओंका आना और परशुरामद्वारा मारा जाना, पुनः राजा सुचन्द्र और परशुरामका युद्ध, परशुरामद्वारा कालीस्तवन, ब्रह्माका आकर परशुरामको युक्ति बताना, परशुरामका राजा सुचन्द्रसे मन्त्र और कवच माँगकर उसका वध करना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! युद्धमें मत्स्यराजके गिर जानेपर महाराज कार्तवीर्यके भेजे हुए बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भ, मिथिलेश्वर, निषधराज, मगधाधिपति एवं कान्यकुब्ज, सौराष्ट्र, राढीय, वारेन्द्र, सौम्य बंगीय, महाराष्ट्र, गुर्जरजातीय और कलिंग आदिके सैकड़ों-सैकड़ों राजा बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ आये; परंतु परशुरामजीने सबको रणभूमिमें सुला दिया। यह देखकर एक लाख नरपतियोंके साथ बारह अक्षौहिणी सेना लेकर राजा सुचन्द्र रणस्थलमें आये। सुचन्द्रके साथ भयानक युद्ध हुआ, पर वे परास्त न हो सके। तब परशुरामने देखा कि मुण्डमाला धारण किये हुए विकटानना भयंकरी जगज्जननी भद्रकाली उनकी रक्षा कर रही हैं। यह देखकर परशुरामने शस्त्रास्त्रका त्याग करके महामायाकी स्तुति आरम्भ की।

परशुराम बोले—आप शंकरजीकी प्रियतमा पत्नी हैं, आपको नमस्कार है। सारस्वरूपा आपको बारंबार प्रणाम है। दुर्गतिनाशिनीको मेरा अभिवादन है। मायारूपा आपको मैं बारंबार सिर झुकाता हूँ। जगद्धात्रीको नमस्कार-नमस्कार। जगत्कर्त्रीको पुनः-पुनः प्रणाम। जगज्जननीको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। कारणरूपा आपको बारंबार अभिवादन है। सृष्टिका संहार करनेवाली जगन्माता! प्रसन्न होइये। मैं आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करता हूँ, मेरी प्रतिज्ञा सफल कीजिये। मेरे प्रति आपके विमुख हो जानेपर कौन मेरी रक्षा कर सकता है? भक्तवत्सले! शुभे! आप मुझ भक्तपर कृपा कीजिये। सुमुखि! पहले शिवलोकमें आपलोगोंने मुझे जो वरदान दिया था, उस वरको आपको सफल करना चाहिये।

परशुरामद्वारा किये गये इस स्तवनको सुनकर

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रुद्राय स्वाहा नाभिं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा भ्रूश्च सदाऽवतु । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा । ॐ श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा पातु करौ मम । ॐ महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा ॥
ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु । ॐ सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ॥
प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शंकरः । दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च ॥
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः । उत्तरे गिरिशः पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु अधो मृत्युञ्जयः स्वयम् । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे सदा ॥
पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तं च भक्तवत्सलः ॥
इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् । दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवति निश्चितम् ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो रुद्रतुल्यो भवेद् ध्रुवम् । तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥
कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् ॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । सर्वज्ञः सर्वसिद्धीशो मनोयायी भवेद् ध्रुवम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् यः शंकरं प्रभुम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
(गणपतिखण्ड ३५। ११४-१३९)

अम्बिकाका मन प्रसन्न हो गया और 'भय मत करो' यों कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गयीं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस परशुरामकृत स्तोत्रका पाठ करता है, वह अनायास ही महान् भयसे छूट जाता है। वह त्रिलोकीमें पूजित, त्रैलोक्यविजयी, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और शत्रुपक्षका विमर्दन करनेवाला हो जाता है*। इसी बीच ब्रह्माजी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भृगुवंशी परशुरामके पास आकर उनसे उस रहस्यका वर्णन करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—महाभाग राम! अपनी प्रतिज्ञा सफल करनेके लिये पहले तुम सुचन्द्रकी विजयके हेतुभूत रहस्यका मुझसे श्रवण करो। पूर्वकालमें दुर्वासाने सुचन्द्रको दशाक्षरी महाविद्या तथा भद्रकालीका परम दुर्लभ कवच प्रदान किया था। भद्रकालीका कवच देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। वह कवच सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला, अत्यन्त पूजनीय, प्रशंसनीय और त्रिलोकीपर विजय पानेका कारण है। वह कवच जिसके गलेमें वर्तमान है, उसे जीतनेके लिये भूतलपर तुम कैसे समर्थ हो सकते हो? अतः भार्गव! तुम भिक्षाके लिये जाओ और राजासे प्रार्थना करो। सूर्यवंशमें उत्पन्न हुआ वह राजा परम धर्मात्मा एवं दानी है। माँगनेपर वह निश्चय ही प्राण, कवच, मन्त्र आदि सब कुछ दे डालेगा।

मुने! तब परशुराम संन्यासीका वेष धारण करके राजाके पास गये और उससे उन्होंने मन्त्र तथा परम अद्भुत कवचकी याचना की। तब राजाने अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें मन्त्र और कवच दे दिया। तदनन्तर परशुरामने शंकरजीके त्रिशूलसे उस राजाका काम तमाम कर दिया।

(अध्याय ३६)

दशाक्षरी विद्या तथा काली-कवचका वर्णन

नारदजीने कहा—सर्वज्ञ नाथ! अब मैं आपके मुखसे भद्रकाली-कवच तथा उस दशाक्षरी विद्याको सुनना चाहता हूँ।

श्रीनारायण बोले—नारद! मैं दशाक्षरी महाविद्या तथा तीनों लोकोंमें दुर्लभ उस गोपनीय कवचका वर्णन करता हूँ, सुनो। **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा'** यही दशाक्षरी विद्या है। इसे पुष्करतीर्थमें सूर्य-ग्रहणके अवसरपर दुर्वासाने राजाको दिया था। उस समय राजाने दस लाख जप करके मन्त्र सिद्ध किया और

---

* परशुराम उवाच—

नमः शंकरकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः॥
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः। नमोऽस्तु ते जगन्मात्रे कारणायै नमो नमः॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थिकां कुरु॥
त्वयि मे विमुखायां च को मां रक्षितुमीश्वरः। त्वं प्रसन्ना भव शुभे मां भक्तं भक्तवत्सले॥
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरानने॥
जामदग्न्यस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाभवदम्बिका। मा भैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत॥
एतद् भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। महाभयात् समुत्तीर्णः स भवेदवलीलया॥
स पूजितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत्। ज्ञानिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः॥

(गणपतिखण्ड ३६। २९—३६)

इस उत्तम कवचके पाँच लाख जपसे ही वे सिद्धकवच हो गये। तत्पश्चात् वे अयोध्यामें लौट आये और इसी कवचकी कृपासे उन्होंने सारी पृथ्वीको जीत लिया।

नारदजीने कहा—प्रभो! जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ है, उस दशाक्षरी विद्याको तो मैंने सुन लिया। अब मैं कवच सुनना चाहता हूँ, वह मुझसे वर्णन कीजिये।

श्रीनारायण बोले—विप्रेन्द्र! पूर्वकालमें त्रिपुर-वधके भयंकर अवसरपर शिवकी विजयके लिये नारायणने कृपा करके शिवको जो परम अद्भुत कवच प्रदान किया था, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। मुने! वह कवच अत्यन्त गोपनीयोंसे भी गोपनीय, तत्त्वस्वरूप तथा सम्पूर्ण मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। उसीको पूर्वकालमें शिवजीने दुर्वासाको दिया था और दुर्वासाने महामनस्वी राजा सुचन्द्रको प्रदान किया था।

'**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**' मेरे मस्तककी रक्षा करे। '**क्लीं**' कपालकी तथा '**ह्रीं ह्रीं ह्रीं**' नेत्रोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा**' सदा मेरी नासिकाकी रक्षा करे। '**क्रीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा**' सदा दाँतोंकी रक्षा करे। '**ह्रीं भद्रकालिके स्वाहा**' मेरे दोनों ओठोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**' सदा कण्ठकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा**' सदा दोनों कानोंकी रक्षा करें। '**ॐ क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा**' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। '**ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा**' सदा मेरे वक्ष:स्थलकी रक्षा करे। '**ॐ क्रीं कालिकायै स्वाहा**' सदा मेरी नाभिकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा**' सदा मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करे। '**रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा**' सदा हाथोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा**' सदा पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा**' सदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्वमें '**महाकाली**' और अग्निकोणमें '**रक्तदन्तिका**' रक्षा करें। दक्षिणमें **चामुण्डा** रक्षा करें। नैर्ऋत्यकोणमें '**कालिका**' रक्षा करें। पश्चिममें '**श्यामा**' रक्षा करें। वायव्यकोणमें '**चण्डिका**', उत्तरमें '**विकटास्या**' और ईशानकोणमें '**अट्टहासिनी**' रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें '**लोलजिह्वा**' रक्षा करें। अधोभागमें सदा '**आद्यामाया**' रक्षा करें। जल, स्थल और आन्तरिक्षमें सदा '**विश्वप्रसू**' रक्षा करें।

वत्स! यह कवच समस्त मन्त्रसमूहका मूर्तरूप, सम्पूर्ण कवचोंका सारभूत और उत्कृष्टसे भी उत्कृष्टतर है; इसे मैंने तुम्हें बतला दिया। इसी कवचकी कृपासे राजा सुचन्द्र सातों द्वीपोंके अधिपति हो गये थे। इसी कवचके प्रभावसे पृथ्वीपति मान्धाता सप्तद्वीपवती पृथ्वीके अधिपति हुए थे। इसीके बलसे प्रचेता और लोमश सिद्ध हुए थे तथा इसीके बलसे सौभरि और पिप्पलायन योगियोंमें श्रेष्ठ कहलाये। जिसे यह कवच सिद्ध हो जाता है, वह समस्त सिद्धियोंका स्वामी बन जाता है। सभी महादान, तपस्या और व्रत इस कवचकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते, यह निश्चित है। जो इस कवचको जाने बिना जगज्जननी कालीका भजन करता है, उसके लिये एक करोड़ जप करनेपर भी यह मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।
(अध्याय ३७)

सुचन्द्र-पुत्र पुष्कराक्षके साथ परशुरामका युद्ध, पाशुपतास्त्र छोड़नेके लिये उद्यत परशुरामके पास विष्णुका आना और उन्हें समझाना, विष्णुका विप्रवेषसे पुत्रसहित पुष्कराक्षसे लक्ष्मीकवच तथा दुर्गाकवचको माँग लेना, लक्ष्मी-कवचका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—ब्रह्मन्! रणक्षेत्रमें राजाधिराजोंके शिरोमणि सुचन्द्रके गिर जानेपर तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ पुष्कराक्ष आ धमका। महान् पराक्रमी राजा पुष्कराक्ष सूर्यवंशमें उत्पन्न, महालक्ष्मीका सेवक, लक्ष्मीवान् और सूर्यके समान प्रभाशाली था। वह सुचन्द्रका पुत्र था। उसके गलेमें महालक्ष्मीका मनोहर कवच बँधा था, जिसके प्रभावसे वह परमैश्वर्यसम्पन्न और त्रिलोकविजयी हो गया था। उसे देखकर बुद्धिमान् परशुरामके सभी भाई हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण करके युद्ध करनेके लिये आ डटे। राजाने लीलापूर्वक बाणसमूहकी वर्षा करके उन्हें छेद डाला। तब उन वीरोंने भी हँसते-हँसते उन बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर तो पुष्कराक्षके साथ घोर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुरामने पाशुपतास्त्रके सिवा सभी अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, पर पुष्कराक्षने सबको काट गिराया। तब अपने समस्त शस्त्रास्त्रोंको विफल देखकर परशुरामने स्नान करके शिवजीको प्रणाम किया और पाशुपतास्त्रका प्रयोग करना चाहा; इतनेमें भगवान् नारायण ब्राह्मणका वेष धारण करके वहाँ प्रकट हो गये और बोले।

ब्राह्मणवेषधारी नारायणने कहा—वत्स भार्गव! यह क्या कर रहे हो? तुम तो ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो; फिर भ्रमवश क्रोधावेशमें आकर मनुष्यका वध करनेके लिये पाशुपतका प्रयोग क्यों कर रहे हो? इस पाशुपतसे तो तत्काल ही सारा विश्व भस्म हो सकता है; क्योंकि यह शस्त्र परमेश्वर श्रीकृष्णके अतिरिक्त और सबका विनाशक है। अहो! पाशुपतको जीतनेकी शक्ति तो सुदर्शनमें ही है; क्योंकि श्रीहरिका सुदर्शनचक्र समस्त अस्त्रोंका मान मर्दन करनेवाला है। शिवजीका पाशुपतास्त्र और श्रीहरिका सुदर्शनचक्र—ये ही दोनों तीनों लोकोंमें समस्त अस्त्रोंमें प्रधान हैं। इसलिये ब्रह्मन्! तुम पाशुपतास्त्रको रख दो और मेरी बात सुनो। इस समय तुम जिस प्रकार महाबली राजा पुष्कराक्षको जीत सकोगे तथा जिस प्रकार अजेय कार्तवीर्यपर विजय पा सकोगे, वह सारा उपाय तुम्हें बतलाता हूँ; सावधानतया श्रवण करो। महालक्ष्मीका कवच, जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ है, पुष्कराक्षने भक्तिपूर्वक विधि-विधानके साथ अपने गलेमें धारण कर रखा है और पुष्कराक्षका पुत्र दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका परम अद्भुत एवं उत्तम कवच अपनी दाहिनी भुजापर बाँधे हुए है। इन कवचोंकी कृपासे वे दोनों विश्वपर विजय पा लेनेमें समर्थ हैं। उनके शरीरपर कवचोंके वर्तमान रहते त्रिभुवनमें उन्हें कौन जीत सकता है। मुने! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल करनेके निमित्त उन दोनोंके संनिकट माँगनेके लिये जाऊँगा और उनसे कवचकी याचना करूँगा। ब्राह्मणकी बात सुनकर परशुरामका मन भयभीत हो गया, तब वे दुःखी हृदयसे उस वृद्ध ब्राह्मणसे बोले।

परशुरामने कहा—'महाप्राज्ञ! ब्राह्मणरूपधारी आप कौन हैं, मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ; अतः मुझ अनजानको शीघ्र ही अपना परिचय दीजिये, तत्पश्चात् राजाके पास जाइये।' परशुरामका वचन सुनकर ब्राह्मणको हँसी आ गयी, वे 'मैं विष्णु हूँ' यों कहकर राजाके पास याचना करनेके लिये चले गये। उन दोनोंके संनिकट जाकर विष्णुने उनसे कवचकी याचना की। तब विष्णुकी

मायासे मोहित होकर उन्होंने विष्णुको दोनों कवच दान कर दिये। भगवान् विष्णु उन कवचोंको लेकर वैकुण्ठको चले गये।

नारदजीने पूछा—महामुने! भूपाल पुष्कराक्षको महालक्ष्मीका कवच किसने दिया था? तथा पुष्कराक्षके पुत्रको दुर्गाका दुर्लभ कवच किसने बताया था? आप इसे बतलानेकी कृपा करें; क्योंकि इसे सुननेकी मेरी प्रबल उत्कण्ठा है। जगद्गुरो! साथ ही मुझे यह भी बताइये कि उन दोनोंके कवच कैसे थे, उनका क्या फल है और वे दोनों मन्त्र किस तरहके थे?

श्रीनारायणने कहा—नारद! बुद्धिमान् पुष्कराक्षको महालक्ष्मीका कवच और दशाक्षर-मन्त्र सनत्कुमारने दिया था। उन्होंने ही गोपनीय स्तोत्र, उसका चरित, पूजाकी विधि और सामवेदोक्त मनोहर ध्यान भी बतलाया था। दुर्गाका कवच, गुह्य स्तोत्र और दशाक्षर-मन्त्र पूर्वकालमें दुर्वासाने पुष्कराक्ष-पुत्रको प्रदान किया था। इसके पश्चात् देवीके उस परम अद्भुत सम्पूर्ण चरितको सुनोगे, जिसे उन्होंने महायुद्धके आरम्भमें प्रार्थना करनेपर बतलाया था। अब मैं तुम्हें महालक्ष्मीका मन्त्र बतलाता हूँ; उसे श्रवण करो। '**ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा**' यही वह परम अद्भुत मन्त्र है। मुने! सनत्कुमारने बुद्धिमान् पुष्कराक्षको जो पूजाविधि और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया था, उसे सुनो। सहस्रदलकमल जिनका आसन है, जो भगवान् पद्मनाभकी सती-साध्वी प्रियतमा हैं, कमल जिनका घर है, जिनका मुख कमलके सदृश और नेत्र कमलपत्रकी-सी आभावाले हैं, कमलका फूल जिन्हें अधिक प्रिय है, जो कमल-पुष्पकी शय्यापर शयन करती हैं, जिनके हाथमें कमल शोभा पाता है, जो कमल-पुष्पोंकी मालासे विभूषित हैं, कमलोंके आभूषण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जो स्वयं कमलोंकी शोभाकी वृद्धि करनेवाली हैं और मुस्कराती हुई जो कमल-वनकी ओर निहार रही हैं; उन पद्मिनी देवीका मैं आनन्दपूर्वक भजन करता हूँ।

साधकको चाहिये कि चन्दनका अष्टदल-कमल बनाकर उसपर कमल-पुष्पोंद्वारा महालक्ष्मीकी पूजा करे। फिर 'गण' का भलीभाँति पूजन करके उन्हें षोडशोपचार समर्पित करे। तदनन्तर स्तुति करके भक्तिपूर्वक उनके सामने सिर झुकावे। ब्रह्मन्! अब सबका साररूप कवच तुम्हें बतलाता हूँ; सुनो।

श्रीनारायण आगे कहते हैं—विप्रवर! भगवान् पद्मनाभने अपने नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माको लक्ष्मीका जो परम शुभकारक कवच प्रदान किया था, उसे सुनो। उस कवचको पाकर ब्रह्माने कमलपर बैठे-बैठे जगत्की सृष्टि की और महालक्ष्मीकी कृपासे वे लक्ष्मीवान् हो गये। फिर पद्मालयासे वरदान प्राप्त करके ब्रह्मा लोकोंके अधीश्वर हो गये। उन्हीं ब्रह्माने पद्मकल्पमें अपने प्रिय पुत्र बुद्धिमान् सनत्कुमारको यह परम अद्भुत कवच दिया था। नारद! सनत्कुमारने वह कवच पुष्कराक्षको प्रदान किया था, जिसके पढ़ने एवं धारण करनेसे ब्रह्मा समस्त सिद्धोंके स्वामी, महान् परमैश्वर्यसे सम्पन्न और सम्पूर्ण सम्पदाओंसे युक्त हो गये।

सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके प्रदाता इस कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है, स्वयं पद्मालया देवी हैं और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षमें इसका विनियोग किया जाता है। यह परम अद्भुत कवच महापुरुषोंके पुण्यका कारण है। '**ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा**' मेरे मस्तककी रक्षा करे। '**श्रीं**' मेरे कपालकी और '**श्रीं श्रियै नमः**' नेत्रोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं श्रियै स्वाहा**' सदा दोनों कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा**' मेरी नासिकाकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा**'

सदा दाँतोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै स्वाहा**' सदा दाँतोंके छिद्रोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं नारायणेशायै स्वाहा**' सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं केशवकान्तायै स्वाहा**' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा**' सदा नाभिकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे स्वाहा**' सदा मेरे वक्ष:स्थलकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा**' सदा पीठकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा**' सदा मेरे हाथोंकी रक्षा करे। '**ॐ श्रीं निवासकान्तायै स्वाहा**' सदा मेरे पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा**' मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्व दिशामें '**महालक्ष्मी**' और अग्निकोणमें '**कमलालया**' मेरी रक्षा करें। दक्षिणमें '**पद्मा**' और नैर्ऋत्यकोणमें '**श्रीहरिप्रिया**' मेरी रक्षा करें। पश्चिममें '**पद्मालया**' और वायव्यकोणमें स्वयं '**श्री**' मेरी रक्षा करें। उत्तरमें '**कमला**' और ईशानकोणमें '**सिन्धुकन्यका**' रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें '**नारायणेशी**' रक्षा करें। अधोभागमें '**विष्णुप्रिया**' रक्षा करें। '**विष्णुप्राणाधिका**' सदा सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे इस सर्वैश्वर्यप्रद नामक परम अद्भुत कवचका वर्णन कर दिया। यह समस्त मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। धर्मात्मा पुरुष ब्राह्मणको मेरुके समान सुवर्णका पहाड़ दान करके जो फल पाता है, उससे कहीं अधिक फल इस कवचसे मिलता है। जो मनुष्य विधिवत् गुरुकी अर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह प्रत्येक जन्ममें श्रीसम्पन्न होता है और उसके घरमें लक्ष्मी सौ पीढ़ियोंतक निश्चलरूपसे निवास करती हैं। वह देवेन्द्रों तथा राक्षसराजोंद्वारा निश्चय ही अवध्य हो जाता है। जिसके गलेमें यह कवच विद्यमान रहता है, उस बुद्धिमान्‌ने सभी प्रकारके पुण्य कर लिये, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली और समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। लोभ, मोह और भयसे भी इसे जिस-किसीको नहीं देना चाहिये; अपितु शरणागत एवं गुरुभक्त शिष्यके सामने ही प्रकट करना चाहिये। इस कवचका ज्ञान प्राप्त किये बिना जो जगज्जननी लक्ष्मीका जप करता है, उसके लिये करोड़ोंकी संख्यामें जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।* (अध्याय ३८)

---

* नारायण उवाच

सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम्॥
ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः॥
ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम्॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदाऽवतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं निवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया। पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु श्रीः स्वयम्। उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका॥
नारायणेशी पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। सततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम॥

दुर्गा-कवचका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! महालक्ष्मीके मनोहर कवचका वर्णन तो आपने कर दिया। ब्रह्मन्! अब दुर्गतिनाशिनी दुर्गाके उस उत्तम कवचको बतलाइये, जो पद्माक्षके प्राणतुल्य, जीवनदाता, बलका हेतु, कवचोंका सार-तत्त्व और दुर्गाकी सेवाका मूल कारण है।

श्रीनारायण बोले—नारद! प्राचीन कालमें श्रीकृष्णने गोलोकमें ब्रह्माको दुर्गाका जो शुभप्रद कवच दिया था, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालमें त्रिपुर-संग्रामके अवसरपर ब्रह्माजीने इसे शंकरको दिया, जिसे भक्तिपूर्वक धारण करके रुद्रने त्रिपुरका संहार किया था। फिर शंकरने इसे गौतमको और गौतमने पद्माक्षको दिया, जिसके प्रभावसे विजयी पद्माक्ष सातों द्वीपोंका अधिपति हो गया। जिसके पढ़ने एवं धारण करनेसे ब्रह्मा भूतलपर ज्ञानवान् और शक्तिसम्पन्न हो गये। जिसके प्रभावसे शिव सर्वज्ञ और योगियोंके गुरु हुए और मुनिश्रेष्ठ गौतम शिव-तुल्य माने गये। इस 'ब्रह्माण्डविजय' नामक कवचके प्रजापति ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी हैं और ब्रह्माण्डविजयके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह परम अद्भुत कवच महापुरुषोंका पुण्यतीर्थ है।

'**ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा**' मेरे मस्तककी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं**' मेरे कपालकी और '**ॐ ह्रीं श्रीं**' नेत्रोंकी रक्षा करे। '**ॐ दुर्गायै नमः**' सदा मेरे दोनों कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं श्रीं**' सदा सब ओरसे मेरी नासिकाकी रक्षा करे। '**ह्रीं श्रीं हूं**' दाँतोंकी और '**क्लीं**' दोनों ओष्ठोंकी रक्षा करे। '**क्रीं क्रीं क्रीं**' कण्ठकी रक्षा करे। '**दुर्गे**' कपोलोंकी रक्षा करे। '**दुर्गविनाशिन्यै स्वाहा**' निरन्तर कंधोंकी रक्षा करे। '**विपद्विनाशिन्यै स्वाहा**' सब ओरसे मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। '**दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा**' सदा नाभिकी रक्षा करे। '**दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष**' सब ओरसे मेरी पीठकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा**' सदा हाथ-पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा**' सदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्वमें '**महामाया**' रक्षा करे। अग्निकोणमें '**कालिका**', दक्षिणमें '**दक्षकन्या**' और नैर्ऋत्यकोणमें '**शिवसुन्दरी**' रक्षा करे। पश्चिममें '**पार्वती**', वायव्यकोणमें '**वाराही**', उत्तरमें '**कुबेरमाता**' और ईशानकोणमें '**ईश्वरी**' सदा-सर्वदा रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें '**नारायणी**' रक्षा करें और अधोभागमें सदा '**अम्बिका**' रक्षा करें। जाग्रत्कालमें ज्ञानप्रदा रक्षा करें और सोते समय निद्रा सदा रक्षा करें।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि॥
अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्। देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत्॥
स सर्वपुण्यवान् धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत्॥
इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

(गणपतिखण्ड ३८। ५७—८२)

वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह 'ब्रह्माण्डविजय' नामक कवच बतला दिया। यह परम अद्भुत तथा सम्पूर्ण मन्त्र-समुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। समस्त तीर्थोंमें भलीभाँति गोता लगानेसे, सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे तथा सभी प्रकारके व्रतोपवास करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल मनुष्य इस कवचके धारण करनेसे पा लेता है। जो विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे गुरुकी पूजा करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओंका मर्दन करनेवाला तथा त्रिलोकविजयी होता है। जो इस कवचको न जानकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका भजन करता है, उसके लिये एक करोड़ जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता। नारद! यह काण्वशाखोक्त सुन्दर कवच, जिसका मैंने वर्णन किया है, परम गोपनीय तथा अत्यन्त दुर्लभ है। इसे जिस किसीको नहीं देना चाहिये।* (अध्याय ३९)

---

* नारायण उवाच—

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम्। श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शंकराय ददौ पुरा। जघान त्रिपुरं रुद्रो यद् धृत्वा भक्तिपूर्वकम्॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः। यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी॥
यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ज्ञानवान् शक्तिमान् भुवि। शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः।
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः॥
ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम्॥
ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। ॐ ह्रीं मे पातु कपालं च ॐ ह्रीं श्रीमिति लोचने॥
पातु मे कर्णयुग्मं च ॐ दुर्गायै नमः सदा। ॐ ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः॥
ह्रीं श्रीं ह्रूमिति दन्तानि पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्। क्रीं क्रीं क्रीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डकम्॥
स्कन्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वाहा पातु निरन्तरम्। वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः॥
दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः॥
ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥
प्राच्यां पातु महामाया आग्नेय्यां पातु कालिका। दक्षिणे दक्षकन्या च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा॥
ऊर्ध्वे नारायणी पातु अम्बिकाधः सदाऽवतु। ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत् फलम्। सर्वव्रतोपवासे च तत् फलं लभते नरः॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् दुर्गतिनाशिनीम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥
कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सुन्दरम्। यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्॥
(गणपतिखण्ड ३९। ३—२३)

परशुरामद्वारा पुत्रसहित राजा सहस्राक्षका वध, कार्तवीर्य-परशुराम-युद्ध, परशुरामकी मूर्च्छा, शिवद्वारा उन्हें पुनर्जीवन-दान, कार्तवीर्य-परशुराम-संवाद, आकाशवाणी सुनकर शिवका विप्रवेष धारण करके कार्तवीर्यसे कवच माँग लेना, परशुद्वारा कार्तवीर्य तथा अन्यान्य क्षत्रियोंका संहार, ब्रह्माका आगमन और परशुरामको गुरुस्वरूप शिवकी शरणमें जानेका उपदेश देकर स्वस्थानको लौट जाना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! जब भगवान् विष्णु महालक्ष्मी-कवच तथा दुर्गा-कवचको लेकर वैकुण्ठको चले गये, तब भृगुनन्दन परशुरामने पुत्रसहित राजा *सहस्राक्षपर प्रहार किया। यद्यपि राजा कवचहीन था तथापि वह प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मास्त्रद्वारा एक सप्ताहतक युद्ध करता रहा। अन्ततोगत्वा पुत्रसहित धराशायी हो गया। सहस्राक्षके गिर जानेपर महाबली कार्तवीर्यार्जुन दो लाख अक्षौहिणी सेनाके साथ स्वयं युद्ध करनेके लिये आया। वह रत्ननिर्मित खोलसे आच्छादित स्वर्णमय रथपर सवार हो अपने चारों ओर नाना प्रकारके अस्त्रोंको सुसज्जित करके रणके मुहानेपर डटकर खड़ा हो गया। परशुरामने राजराजेश्वर कार्तवीर्यको समरभूमिमें उपस्थित देखा। वह रत्ननिर्मित आभूषणोंसे सुशोभित करोड़ों राजाओंसे घिरा हुआ था। रत्ननिर्मित छत्र उसकी शोभा बढ़ा रहा था। वह रत्नोंके गहनोंसे विभूषित था। उसके सर्वाङ्गमें चन्दनकी खौर लगी हुई थी। उसका रूप अत्यन्त मनोहर था और वह मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। राजा मुनिवर परशुरामको देखकर रथसे उतर पड़ा और उन्हें प्रणाम करके पुनः रथपर सवार हो राज-समुदायके साथ सामने खड़ा हुआ। तब परशुरामने राजाको समयोचित शुभाशीर्वाद दिया और पुनः यों कहा—'अनुयायियोंसहित तुम स्वर्गमें जाओ।' नारद! इसके बाद वहाँ दोनों सेनाओंमें युद्ध होने लगा। तब परशुरामके शिष्य तथा उनके महाबली भाई कार्तवीर्यसे पीड़ित होकर भाग खड़े हुए। उस समय उनके सारे अङ्ग घायल हो गये थे। राजाके बाणसमूहसे आच्छादित होनेके कारण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामको अपनी तथा राजाकी सेना ही नहीं दीख रही थी। फिर तो परस्पर घोर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग होने लगा। अन्तमें राजाने दत्तात्रेयके दिये हुए अमोघ शूलको यथाविधि मन्त्रोंका पाठ करके परशुरामपर छोड़ दिया। उस सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली एवं प्रलयाग्निकी शिखाके सदृश शूलके लगते ही परशुराम धराशायी हो गये। तदनन्तर भगवान् शिवने वहाँ आकर परशुरामको पुनर्जीवन दान दिया। इसी समय वहाँ युद्धस्थलमें भक्तवत्सल कृपालु भगवान् दत्तात्रेय शिष्यकी रक्षा करनेके लिये आ पहुँचे। फिर परशुरामने क्रुद्ध होकर पाशुपतास्त्र हाथमें लिया; परंतु दत्तात्रेयकी दृष्टि पड़नेसे वे रणभूमिमें स्तम्भित हो गये। तब रणके मुहानेपर स्तम्भित हुए परशुरामने देखा कि जिनके शरीरकी कान्ति नूतन जलधरके सदृश है; जो हाथमें वंशी लिये बजा रहे हैं; सैकड़ों गोप जिनके साथ हैं; जो मुस्कराते हुए प्रज्वलित सुदर्शन चक्रको निरन्तर घुमा रहे हैं और अनेकों पार्षदोंसे घिरे हुए हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिनका स्तवन कर रहे हैं; वे गोपवेषधारी श्रीकृष्ण युद्धक्षेत्रमें राजाकी रक्षा कर रहे हैं। इसी समय वहाँ यों आकाशवाणी हुई—'दत्तात्रेयद्वारा दिया हुआ परमात्मा श्रीकृष्णका कवच उत्तम

---

* पुष्कराक्षका दूसरा नाम प्रतीत होता है।

रत्नकी गुटिकाके साथ राजाकी दाहिनी भुजापर बँधा हुआ है, अतः योगियोंके गुरु शंकर भिक्षारूपसे जब उस कवचको माँग लेंगे, तभी परशुराम राजाका वध करनेमें समर्थ हो सकेंगे।' नारद! उस आकाशवाणीको सुनकर शंकर ब्राह्मणका रूप धारण करके गये और राजासे याचना करके उसका कवच माँग लाये। फिर शम्भुने श्रीकृष्णका वह कवच परशुरामको दे दिया। इसके बाद देवगण अपने-अपने उत्तम स्थानको चले गये। तब परशुरामने राजाको युद्धके लिये प्रेरित करते हुए कहा।

परशुरामजी बोले—राजेन्द्र! उठो और साहसपूर्वक युद्ध करो; क्योंकि मनुष्योंकी जय-पराजयमें काल ही कारण है। तुमने विधिपूर्वक शास्त्रोंका अध्ययन किया है, दान दिया है, सारी पृथ्वीपर उत्तम रीतिसे शासन किया है, संग्राममें यशोवर्धक कार्य किया है, इस समय मुझे मूर्च्छित कर दिया है, सभी राजाओंको जीत लिया है, लीलापूर्वक रावणको काबूमें कर लिया है और दत्तात्रेयद्वारा दिये गये त्रिशूलसे मुझे पराजित कर दिया है; परंतु शंकरजीने मुझे पुनः जीवित कर दिया है। परशुरामकी बात सुनकर परम धर्मात्मा राजा कार्तवीर्यने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और यथार्थ बात कहना आरम्भ किया।

राजाने कहा—प्रभो! मैंने क्या अध्ययन किया, क्या दान दिया अथवा पृथ्वीका क्या उत्तम शासन किया? भूतलपर मेरे समान कितने भूपाल इस लोकसे चले गये। मेरी बुद्धि, तेज, पराक्रम, विविध प्रकारकी युद्ध-निपुणता, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, ज्ञान, दानशक्ति, लौकिक गुण, आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, परम तप—ये सभी मनोरमाके साथ ही नष्ट हो गये। समय आनेपर इन्द्र मानव हो जायँगे। समय आनेपर ब्रह्मा भी मरेंगे। समय आनेपर प्रकृति श्रीकृष्णके शरीरमें तिरोहित हो जायगी। समय आनेपर सभी देवता मर जायँगे। और समय आनेपर त्रिलोकीमें स्थित समस्त चर-अचर प्राणी नष्ट हो जाते हैं। कालका अतिक्रमण करना दुष्कर है। परात्पर श्रीकृष्ण उस काल-के-काल हैं और स्वेच्छानुसार सृष्टिरचयिताके स्रष्टा, संहारकर्ताके संहारक और पालन करनेवालेके पालक हैं। जो महान्, स्थूलसे स्थूलतम, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम, कृश, परमाणुपरक काल, कालभेदक काल है। सारे विश्व जिसके रोयें हैं; वह महाविराट् पुरुष तेजमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंशके बराबर है, जिससे क्षुद्र विराट् उत्पन्न हुआ है, जो सबका उत्कृष्ट कारण है। जो स्वयं स्रष्टा है और ब्रह्मा जिसके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं। उस समय ब्रह्मा यत्नपूर्वक लाखों वर्षोंतक भ्रमण करनेपर भी जब नाभिकमलके दण्डका अन्त न पा सके, तब अपने स्थानपर स्थित हो गये। वहाँ उन्होंने वायुका आहार करके एक लाख वर्षतक तप किया। तदनन्तर उन्हें गोलोक तथा पार्षदसहित श्रीकृष्णके दर्शन हुए।

उस समय श्रीकृष्ण गोप और गोपियोंसे घिरे हुए थे, उनके दो भुजाएँ थीं, हाथमें मुरली लिये हुए थे, रत्न-सिंहासनपर आसीन थे और राधाको वक्षःस्थलसे लगाये हुए थे। उन्हें देखकर ब्रह्माने बारंबार प्रणाम किया और ईश्वरेच्छा जानकर उनकी आज्ञा ले सृष्टिकी रचना करनेमें मन लगाया। शिव, जो सृष्टिके संहारक हैं, वे सृष्टि-कर्ताके ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। श्वेतद्वीपनिवासी क्षुद्र विराट् विष्णु पालनकर्ता हैं। सृष्टिके कारणभूत ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर सभी विश्वोंमें श्रीकृष्णकी कलासे उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति सबको जन्म देनेवाली है और श्रीकृष्ण प्रकृतिसे परे हैं। मायापति परमेश्वर भी उस प्रकृतिरूपिणी शक्तिके बिना सृष्टिका विधान करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि माया बिना सृष्टिकी रचना नहीं हो सकती। वह महेश्वरी माया नित्य है। वह सृष्टि, संहार और पालनकर्ता श्रीकृष्णमें छिपी रहती है

और सृष्टि-रचनाके समय प्रकट हो जाती है। जैसे मिट्टीके बिना कुम्हार घड़ा नहीं बना सकता और स्वर्णके बिना सोनार कुण्डलका निर्माण करनेमें असमर्थ है (उसी तरह स्रष्टा मायाके बिना सृष्टि-रचना नहीं कर सकते)। वह शक्ति ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिकालमें राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गादेवी और सरस्वती नामसे पाँच प्रकारकी हो जाती हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी जो प्राणाधिष्ठात्री देवी हैं, वह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतमा 'राधा' कही जाती हैं। जो सम्पूर्ण मङ्गलोंको सम्पन्न करनेवाली, परमानन्दरूपा तथा ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं; वे 'लक्ष्मी' नामसे पुकारी जाती हैं। जो वेद, शास्त्र और योगकी जननी, परम दुर्लभ और परमेश्वरकी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उनका नाम 'सावित्री' है। जो सर्वशक्तिस्वरूपिणी, सर्वज्ञानात्मिका, सर्वस्वरूपा और बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं; वे दुर्गनाशिनी 'दुर्गा' कहलाती हैं। जो वाणीकी अधिष्ठात्री देवी और सदा शास्त्र-ज्ञान प्रदान करनेवाली हैं तथा जो श्रीकृष्णके कण्ठसे उत्पन्न हुई हैं; वे देवी 'सरस्वती' कही जाती हैं। आदिमें स्वयं मूलप्रकृति परमेश्वरीदेवी पाँच प्रकारकी थीं। परंतु वे ही पीछे सृष्टि-क्रमसे बहुत-सी कलाओंवाली हो गयीं। सृष्टि-कालमें मायाद्वारा स्त्रियाँ प्रकृतिके और पुरुषगण पुरुषके अंशसे उत्पन्न हुए; क्योंकि माया-शक्ति बिना सृष्टि नहीं हो सकती। ब्रह्मन्! प्रत्येक विश्वमें सृष्टि सदा ब्रह्मासे ही प्रकट होती है। विष्णु उसके पालक और निरन्तर मङ्गल प्रदान करनेवाले शिव संहारक हैं। परशुराम! यह ज्ञान दत्तात्रेयजीका दिया हुआ है, उन्होंने पुष्करतीर्थमें माघी पूर्णिमाके दिन दीक्षाके अवसरपर मुनिवरोंके संनिकट मुझे दिया था। इतना कहकर कार्तवीर्यने मुस्कराते हुए परशुरामको नमस्कार किया और शीघ्र ही बाणसहित धनुष हाथमें लेकर वह रथपर जा बैठा।

तत्पश्चात् परशुरामने श्रीहरिका स्मरण करते हुए ब्रह्मास्त्रद्वारा राजाकी सेनाका सफाया कर दिया। फिर लीलापूर्वक पाशुपतास्त्रका प्रयोग करके राजाकी जीवनलीला समाप्त कर दी। इसी प्रकार परशुरामने शिवजीका स्मरण करते हुए खेल-ही-खेलमें क्रमशः इक्कीस बार पृथ्वीको राजाओंसे शून्य कर दिया। परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये क्षत्रियोंके गर्भमें स्थित तथा माताकी गोदमें खेलनेवाले शिशुओंका, नौजवानोंका तथा वृद्धोंका संहार कर डाला। इस प्रकार कार्तवीर्य गोलोकमें श्रीकृष्णके संनिकट चला गया और परशुराम श्रीहरिका स्मरण करते हुए अपने आश्रमको लौट गये। महेश्वरने इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे हीन देख और रामको फरसेद्वारा क्रीडा करते देखकर उनका नाम परशुराम रख दिया। नारद! तब देवता, मुनि, देवियाँ, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर—ये सभी लोग परशुरामके मस्तकपर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और हरिनाम-संकीर्तन होने लगा। इस प्रकार परशुरामके उज्ज्वल यशसे सारा जगत् व्याप्त हो गया। फिर ब्रह्मा, भृगु, शुक्र, च्यवन, वाल्मीकि तथा परम प्रसन्न हुए जमदग्नि ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। उनके सारे अङ्ग पुलकायमान थे और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वे सभी हाथमें दूब और पुष्प लेकर मङ्गलाशासन कर रहे थे। तब परशुरामने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन सबको प्रणाम किया। तब क्रमशः 'तात' यों कहते हुए पहले ब्रह्माने उन्हें अपनी गोदमें बैठा लिया। फिर जगद्गुरु स्वयं ब्रह्मा परशुरामसे हितकारक, नीतियुक्त, वेदका सारतत्त्व और परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

ब्रह्माने कहा—राम! जो सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला परमोत्कृष्ट, सर्वसम्मत और सत्य है, वह काण्वशाखोक्त वचन कहता हूँ, सुनो। जो सभी पूजनीयोंमें इष्ट, पूज्यतम और प्रधान है, वह जन्म देनेके कारण जनक और पालन करनेके कारण पिता कहा जाता है। किंतु मुने! जो

अन्नदाता पिता है, वह जन्मदाता पितासे बड़ा है; क्योंकि पितासे उत्पन्न हुआ शरीर अन्नके बिना नित्य क्षीण होता जाता है। माता उन दोनोंसे सौ गुनी पूज्या, मान्या और वन्दनीया है; क्योंकि गर्भमें धारण करने और पालन-पोषण करनेसे वह उन दोनोंसे बड़ी है। श्रुतिमें ऐसा सुना गया है कि अपना अभीष्टदेव उन सबसे सौगुना बढ़कर पूज्य है और ज्ञान, विद्या तथा मन्त्र देनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे भी बढ़कर है। गुरुपुत्र गुरुकी भाँति ही मान्य है; किंतु गुरुपत्नी उससे भी अधिक पूज्या है। देवताके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर लेते हैं, परंतु गुरुके क्रुद्ध होनेपर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिये गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही महेश्वरदेव, गुरु ही परब्रह्म और ब्राह्मणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। गुरु ही ज्ञान देते हैं और वह ज्ञान हरि-भक्ति उत्पन्न करता है। इस प्रकार जो हरि-भक्ति प्रदान करनेवाला है, उससे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित हुए मनुष्यको जहाँसे ज्ञानरूपी दीपक प्राप्त होता है, जिसे पाकर सब कुछ निर्मल दीखने लगता है, उससे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? गुरुके दिये हुए मन्त्रका जप करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस ज्ञानसे सर्वज्ञता तथा सिद्धि मिलती है; अतः गुरुसे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? गुरुद्वारा दी गयी जिस विद्याके बलसे मनुष्य सर्वत्र सुखपूर्वक विजयी होता है और जगत्‌में पूज्य भी हो जाता है, उस गुरुसे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? हे पुत्र! श्रीकृष्ण तुम्हारे अभीष्टदेव हैं और स्वयं शंकर गुरु हैं;अतः तुम अभीष्टदेवसे भी बढ़कर पूजनीय गुरुकी शरण ग्रहण करो। जिनके आश्रयसे तुमने इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे रहित कर दिया है और श्रीहरिकी भक्ति प्राप्त की है; उन शिवकी शरणमें जाओ। जो मङ्गलस्वरूप, कल्याणकी मूर्ति, कल्याणदाता, कल्याणके कारण, पार्वतीके आराध्य और शान्तरूप हैं; अपने गुरुदेव उन शिवकी शरणमें जाओ। तुम्हारे इष्टदेव जो गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे ही अपने अंशसे शिवका रूप धारण करके तुम्हारे गुरु हुए हैं, अतः उन्हींकी शरण ग्रहण करो। बेटा! समस्त प्राणियोंमें श्रीकृष्ण आत्मा हैं, शिव ज्ञान हैं, मैं मन हूँ और विष्णुकी सारी शक्तियोंसे सम्पन्न प्रकृति प्राण है। जो ज्ञानदाता, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानके कारण, सनातन मृत्युको जीतनेवाले तथा कालके भी काल हैं; उन गुरुकी शरणमें जाओ। जो ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रह, सर्वज्ञ, ऐश्वर्यशाली और सनातन हैं; उन गुरुदेवकी शरणका आश्रय लो। प्रकृतिस्वरूपिणी पार्वतीने लाखों वर्षोंतक तपस्या करके जिन परमेश्वरको अपने मनोनीत प्रियतम पतिके रूपमें प्राप्त किया है; उन गुरुदेवकी शरण ग्रहण करो। नारद! इतना कहकर कमलजन्मा ब्रह्मा मुनियोंके साथ चले गये। तब परशुरामने भी कैलास जानेका विचार किया। (अध्याय ४०)

परशुरामका कैलास-गमन, वहाँ शिव-भवनमें पार्षदोंसहित गणेशको प्रणाम करके आगे बढ़नेको उद्यत होना, गणेशद्वारा रोके जानेपर उनके साथ वार्तालाप

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! श्रीहरिका कवच धारण करके जब परशुरामने पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरुदेव शिवको नमस्कार करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवाको तथा दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणेश्वरको, जो गुणोंमें नारायणके समान थे, देखनेके लिये कैलासको चले। वे भृगुवंशी महात्मा मनके समान वेगशाली थे; अतः उसी

क्षण कैलासपर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अत्यन्त रमणीय परम मनोहर नगर देखा। वह नगर ऐसी बड़ी-बड़ी सड़कोंसे सुशोभित था, जो अत्यन्त भली लगती थीं। उनकी भूमि सोनेकी भूमिकी-सी थी, जिनपर शुद्ध स्फटिकके सदृश मणियाँ जड़ी हुई थीं। उस नगरमें चारों ओर सिंदूरकी-सी रंगवाली मणियोंकी वेदिकाएँ बनी थीं। वह राशि-की-राशि मुक्ताओंसे संयुक्त और मणियोंके मण्डपोंसे परिपूर्ण था। उसमें यक्षोंके एक अरब दिव्य भवन थे, जो रत्नों और काञ्चनोंसे परिपूर्ण, यक्षेन्द्रगणोंसे परिवेष्टित और मणिनिर्मित किवाड़, खम्भे और सीढ़ियोंसे शोभायमान थे। वह नगर दिव्य सुवर्ण-कलशों, चाँदीके बने हुए श्वेत चँवरों, रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित था। वह उद्दीप्त होती हुई सुन्दरियों, हाथोंमें चित्रलिखित पुत्तलिकाएँ लिये हुए निरन्तर स्वच्छन्दतापूर्वक हँसते और खेलते हुए सुन्दर-सुन्दर बालकों एवं बालिकाओं तथा स्वर्गगङ्गाके तटपर उगे हुए पारिजातके वृक्षसमूहोंसे खचाखच भरा था। सुगन्धित एवं खिले हुए पुष्पसमूहोंसे सम्पन्न, कल्पवृक्षोंका आश्रय लेनेवाले कामधेनुसे पुरस्कृत, सिद्धविद्यामें अत्यन्त निपुण पुण्यवान् सिद्धोंद्वारा सेवित था। जो तीन लाख योजन ऊँचे और सौ योजनके विस्तारवाले थे। जिनमें सैकड़ों मोटी-मोटी डालियाँ थीं, जो असंख्य शाखासमूहों और असंख्य फलोंसे संयुक्त थे। परम मनोहर शब्द करनेवाले विभिन्न प्रकारके पक्षिसमूहोंसे व्याप्त थे। शीतल-सुगन्ध वायु जिन्हें कम्पायमान कर रही थी, ऐसे अविनाशी वटवृक्षोंसे, सहस्रों पुष्पोद्यानोंसे, सैकड़ों सरोवरोंसे तथा मणियों एवं रत्नोंसे बने हुए सिद्धेन्द्रोंके लाखों भवनोंसे वह नगर सुशोभित था। उसे देखकर परशुरामका मन अत्यन्त प्रसन्नतासे खिल उठा। फिर सामने ही उन्हें शंकरजीका शोभाशाली रमणीय आश्रम दीख पड़ा। विश्वकर्माने बहुमूल्य सुनहली मणियोंद्वारा उसकी रचना की थी। उसमें हीरे जड़े हुए थे। वह पंद्रह योजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत था। उसके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर सुडौल चौकोर परकोटा बना हुआ था। दरवाजोंपर नाना प्रकारकी चित्रकारियोंसे युक्त रत्नोंके किवाड़ लगे थे। वह उत्तम मणियोंकी वेदियोंसे युक्त तथा मणियोंके खंभोंसे सुशोभित था।

नारद! परशुरामने उस आश्रमके प्रधानद्वारके दाहिनी ओर वृषेन्द्रको और बायीं ओर सिंह तथा नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशकी-सी आभावाले महाभैरव, कृष्णाङ्गभैरव, दृढपराक्रमी क्रोधभैरव, कपालभैरव, रुद्रभैरव तथा सिद्धेन्द्रों, रुद्रगणों, विद्याधरों, गुह्यकों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, कूष्माण्डों, ब्रह्मराक्षसों, वेतालों, दानवों, जटाधारी योगीन्द्रों, यक्षों, किंपुरुषों और किन्नरोंको देखा। उन्हें देखकर भृगुनन्दनने उनके साथ वार्तालाप किया। फिर नन्दिकेश्वरकी आज्ञा ले वे प्रसन्न मनसे भीतर घुसे। आगे बढ़नेपर उन्हें बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए सैकड़ों मन्दिर दीख पड़े, जो अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित चमचमाते हुए कलशोंसे सुशोभित थे। अमूल्य रत्नोंके बने हुए किवाड़, जिनमें हीरे जड़े हुए थे और मोतियाँ एवं निर्मल शीशे लगे हुए थे, उन मन्दिरोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनमें गोरोचना नामक मणियोंके हजारों खंभे लगे थे और वे मणियोंकी सीढ़ियोंसे सम्पन्न थे। परशुरामने उनके भीतरी द्वारको देखा, जो नाना प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित तथा हीरे-मोतियोंकी गुँथी हुई मालाओंसे सुशोभित था। उसकी बायीं ओर कार्तिकेय और दाहिनी ओर गणेश तथा शिव-तुल्य पराक्रमी विशालकाय वीरभद्र दीख पड़े। नारद! वहाँ प्रधान-प्रधान पार्षद और क्षेत्रपाल भी रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्ननिर्मित सिंहासनोंपर बैठे हुए थे। महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न भृगुवंशी

परशुराम उन सबसे सम्भाषण करके हाथमें फरसा लिये हुए शीघ्र ही आगे बढ़नेको उद्यत हुए। उन्हें आगे बढ़ते देखकर गणेशने कहा—'भाई! क्षणभर ठहर जाओ। इस समय महादेव निद्राके वशीभूत होकर शयन कर रहे हैं। मैं उन ईश्वरकी आज्ञा लेकर यहाँ आता हूँ और तुम्हें साथ लिवा ले चलूँगा। इस समय रुक जाओ।' गणेशकी बात सुनकर महाबली परशुराम, जो बृहस्पतिके समान वक्ता थे, कहनेके लिये उद्यत हुए।

(अध्याय ४१)

परशुरामका शिवके अन्तःपुरमें जानेके लिये गणेशसे अनुरोध, गणेशका उन्हें समझाना, न माननेपर उन्हें स्तम्भित करके अपनी सूँड़में लपेटकर सभी लोकोंमें घुमाते हुए गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन कराकर भूतलपर छोड़ देना, होशमें आनेपर परशुरामका कुपित होकर गणेशपर फरसेका प्रहार करना, गणेशका एक दाँत टूट जाना, देवलोकमें हाहाकार, पार्वतीका रुदन और शिवसे प्रार्थना

परशुरामने कहा—भाई! मैं ईश्वरको प्रणाम करनेके लिये अन्तःपुरमें जाऊँगा और भक्तिपूर्वक माता पार्वतीको नमस्कार करके तुरंत ही घरको लौट जाऊँगा। जो सगुण-निर्गुण, भक्तोंके लिये अनुग्रहके मूर्तरूप, सत्य, सत्यस्वरूप, ब्रह्मज्योति, सनातन, स्वेच्छामय, दयासिन्धु, दीनबन्धु, मुनियोंके ईश्वर, आत्मामें रमण करनेवाले, पूर्णकाम, व्यक्त-अव्यक्त, परात्पर, पर-अपरके रचयिता, इन्द्रस्वरूप, सम्मानित, पुरातन, परमात्मा, ईशान, सबके आदि, अविनाशी, समस्त मङ्गलोंके मङ्गलस्वरूप, सम्पूर्ण मङ्गलोंके कारण, सभी मङ्गलोंके दाता, शान्त, समस्त ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाले, परमोत्कृष्ट, शीघ्र ही संतुष्ट होनेवाले, प्रसन्न मुखवाले, शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाले, भक्तोंके लिये अभयप्रद, भक्तवत्सल और समदर्शी हैं, जिनसे मैंने नाना प्रकारकी विद्याओं और अनेक प्रकारके परम दुर्लभ शस्त्रोंको प्राप्त किया है; उन जगदीश्वर गुरुके इस समय मैं दर्शन करना चाहता हूँ। यों कहकर परशुराम गणपतिके आगे खड़े हो गये।

इसपर श्रीगणेशजीने उनको बहुत तरहसे समझाया कि इस समय भगवान् शंकर और माताजी अन्तःपुरमें हैं। आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये, पर परशुरामजी हठ करते ही रहे। उन्होंने अनेकों युक्तियोंद्वारा अपना अंदर जाना निर्दोष बतलाया। यों परस्पर दोनोंमें वाद-विवाद होता रहा। गणेशजी विनयपूर्वक ही परशुरामको रोकते रहे, पर जब परशुरामने बलपूर्वक जाना चाहा तो गणेशजीने रोक दिया। तब परस्परमें वाग्युद्ध और करताड़न होने लगा। अन्तमें परशुरामने गणेशजीपर अपना फरसा उठा लिया। तब कार्तिकेयने बीचमें आकर उन्हें समझाया। परशुरामने गणेशजीको धक्का दे दिया, वे गिर पड़े। फिर उठकर उन्होंने परशुरामको फटकारा। इसपर परशुरामने पुनः कुठार उठा लिया। तब गणेशजीने अपनी सूँड़को बहुत लंबा कर लिया और उसमें परशुरामको लपेटकर वे घुमाने लगे। जैसे छोटेसे साँपको गरुड़ ऊपर उठा लेता है, वैसे ही अपने योगबलसे शिवपुत्र गणेशने उनको उठाकर स्तम्भित कर दिया और सप्तद्वीप, सप्तपर्वत, सप्तसागर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक, शम्भुलोक उनको दिखा दिये। तदनन्तर उन्हें गम्भीर समुद्रमें फेंक दिया। जब वे तैरने लगे तो पुनः पकड़कर उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठ दिखलाकर फिर

गोलोकधाममें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये। उस समय भगवान् रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्ननिर्मित सिंहासनपर आसीन थे। राधाजी उनके वक्षःस्थलसे सटी हुई थीं। तेजमें वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली थे। उनके दो भुजाएँ थीं, हाथमें मुरली शोभा पा रही थी, परम मनोहर रूप था और वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। इस प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन कराकर उनसे बारंबार प्रणाम कराया। यों सम्पूर्ण पापोंका पूर्णतया नाश कर देनेवाले इष्टदेव श्रीकृष्णके दर्शन कराकर गणेशजीने परशुरामके भ्रूणहत्याजनित पापको दूर कर दिया। यों तो पापजनित यातना भोगे बिना नष्ट नहीं होती, किंतु परशुरामको थोड़ी ही भोगनी पड़ी और सब श्रीकृष्णके दर्शनसे नष्ट हो गयी। क्षणभरके बाद परशुरामकी चेतना लौट आयी और वे वेगपूर्वक भूतलपर गिर पड़े। उस समय उनका गणेशद्वारा किया गया स्तम्भन भी दूर हो गया। तब उन्होंने अपने अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, अपने गुरु जगद्गुरु शम्भु तथा गुरुद्वारा दिये गये परम दुर्लभ स्तोत्र और कवचका स्मरण किया। मुने! तदनन्तर परशुरामने अपने अमोघ फरसेको, जिसकी प्रभा ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्यकी प्रभासे सौगुनी थी और जो तेजमें शिव-तुल्य था, गणेशपर चला दिया। पिताके उस अमोघ अस्त्रको आते देखकर स्वयं गणपतिने उसे अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया; उस अस्त्रको व्यर्थ नहीं होने दिया। तब महादेवजीके बलसे वह फरसा वेगपूर्वक गिरकर मूलसहित गणेशके दाँतको काटकर पुनः परशुरामके हाथमें लौट आया। यह देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय और क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा आकाशमें देवगण महान् भयसे भीत होकर हाहाकार करने लगे। इधर वह दाँत खूनसे सनकर शब्द करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा, मानो गेरुसे युक्त स्फटिकका

पर्वत धराशायी हो गया हो। विप्रवर! उस महान् शब्दसे भयभीत होकर पृथ्वी काँप उठी। सभी कैलासवासी प्राणी उसी क्षण डरके मारे मूर्च्छित हो गये। उस समय निद्राके स्वामी जगदीश्वर शिवकी निद्रा भंग हो गयी। वे घबराये हुए पार्वतीके साथ अन्तःपुरसे बाहर आये। मुने! उस समय गणेश घायल हो गये थे, उनका दाँत टूट गया था और मुख रक्तसे सराबोर था। उनका क्रोध शान्त हो गया था और वे लज्जित होकर मुस्कराते हुए सिर झुकाये हुए थे। उन्हें इस दशामें सामने देखकर पार्वतीने शीघ्र ही स्कन्दसे पूछा—'बेटा! यह क्या बात है?' तब स्कन्दने भयपूर्वक पूर्वापरका सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। उसे सुनकर दुर्गाको क्रोध आ गया। वे कृपापरवश हो रोने लगीं और शम्भुके सामने अपने पुत्र गणेशको छातीसे लगाकर बोलीं। सती-साध्वी पार्वतीने शोकके कारण डरकर विनयपूर्वक शम्भुको समझाया और फिर प्रणत होकर प्रणतकी पीड़ा हरनेवाले पतिदेवसे कहने लगीं। (अध्याय ४२-४३)

पार्वतीकी शिवसे प्रार्थना, परशुरामको देखकर उन्हें मारनेके लिये उद्यत होना, परशुरामद्वारा इष्टदेवका ध्यान, भगवान्‌का वामनरूपसे पधारना, शिव-पार्वतीको समझाना और गणेशस्तोत्रको प्रकट करना

पार्वतीने कहा—प्रभो! जगत्‌में सभी लोग शंकरकी किंकरी मुझ दुर्गाको जानते हैं कि यह अपेक्षारहित दासी है, उसका जीवन व्यर्थ है। परंतु ईश्वरके लिये तृणसे लेकर पर्वतपर्यन्त सभी जातियाँ समान हैं; अतः दासीपुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराम—इन दोनोंमें किसका दोष है, इसपर विचार करना उचित है; क्योंकि आप धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। वीरभद्र, कार्तिकेय और पार्षदगण इसके साक्षी हैं। भला, गवाहीके काममें झूठ कौन कहेगा। साथ ही ये दोनों भाई इन लोगोंके लिये समान हैं। यों तो धर्म-निर्णयके अवसरपर गवाही देते समय सत्पुरुषोंके लिये शत्रु और मित्र समान हो जाते हैं (अर्थात् उनकी पक्षपातकी भावना नहीं रहती); क्योंकि जो गवाह गवाहीके विषयको ठीक-ठीक जानते हुए भी सभामें काम, क्रोध, लोभ अथवा भयके कारण झूठी गवाही देता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको नरकमें गिराकर स्वयं भी कुम्भीपाक नरकमें जाता है। यद्यपि मैं इन दोनोंको समझाने तथा इसका निर्णय करनेमें समर्थ हूँ, तथापि आपके समक्ष मेरा आज्ञा देना श्रुतिमें निन्दित कहा गया है। प्रभो! सभामें राजाके वर्तमान रहते भृत्योंकी प्रभाका उसी प्रकार मूल्य नहीं होता, जैसे सूर्यके उदय होनेपर पृथ्वीपर जुगनूकी कोई गणना नहीं होती। सदा परित्यागके भयसे डरी हुई मैंने चिरकालतक तपस्या करके आपके चरणकमलोंको पाया है; अतः जगन्नाथ! दारुण पुत्र-स्नेहके कारण क्रोध, शोक और मोहके वशीभूत होकर मैंने जो कुछ कहा है, उसे क्षमा कीजिये। यदि आपने मेरा परित्याग कर दिया तो उस पुत्रसे क्या लाभ? क्योंकि उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई पतिव्रता नारीके लिये पति सौ पुत्रोंसे बढ़कर है। जो नारी नीच कुलमें उत्पन्न, दुष्टस्वभाववाली, ज्ञानहीन और माता-पिताके दोषसे निन्दित होती है, वह अपने पतिको नहीं मानती। उत्तम कुलमें पैदा हुई स्त्री अपने निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी और जड पतिको भी सदा विष्णुके समान समझती है। समस्त तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ अग्नि अथवा सूर्य पतिव्रताके तेजकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। महादान, पुण्यप्रद व्रतोपवास और तप—ये सभी पति-सेवाके सोलहवें अंशकी समता करनेके योग्य नहीं हैं।* उत्तम कुलमें जन्म लेनेवाली स्त्रियोंके लिये चाहे पुत्र हो, पिता हो अथवा सहोदर भाई हो, कोई भी पतिके समान नहीं होता। स्वामीसे इतना कहकर दुर्गाने अपने सामने परशुरामको देखा, जो निर्भय होकर शम्भुके चरणकमलोंकी सेवा कर रहे थे। तब पार्वती उनसे बोलीं।

पार्वतीने कहा—हे महाभाग राम! तुम ब्रह्मवंशमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी बुद्धि सदसत्‌का विवेचन करनेवाली है। तुम जमदग्निके पुत्र और योगियोंके गुरु इन महादेवके शिष्य हो। सती-साध्वी रेणुका, जो लक्ष्मीके अंशसे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हैं, तुम्हारी माता हैं। तुम्हारे नाना विष्णुभक्त और मामा उनसे भी बढ़कर वैष्णव हैं। तुम मनुके वंशमें उत्पन्न हुए राजा रेणुकके दौहित्र

* कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्। कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम्॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां परः। पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च। तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(गणपतिखण्ड ४४। १३—१५)

हो। साधुस्वभाववाले शूरवीर राजा विष्णुयशा तुम्हारे मामा हैं। तुम किसके दोषसे ऐसे दुर्धर्ष हो गये हो? इस अशुद्धिका कारण मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है; क्योंकि जिनके दोषसे मनुष्य दूषित हो जाता है, तुम्हारे वे सभी सम्बन्धी शुद्ध मनवाले हैं। तुमने करुणासागर गुरु और अमोघ फरसा पाकर पहले क्षत्रिय-जातिपर परीक्षा करके पुनः गुरु-पुत्रपर परीक्षा की है। कहाँ तो श्रुतिमें 'गुरुको दक्षिणा देना उचित है'—यों सुना जाता है और कहाँ तुमने गुरुपुत्रके दाँतको ही तोड़ दिया, अब उसका मस्तक भी काट डालो। शंकरके वरदान तथा अमोघवीर्य फरसेसे तो चूहोंको खानेवाला सियार सिंह और शार्दूलको भी मार सकता है। जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखों-करोड़ों जन्तुओंको मार डालनेकी शक्ति रखता है, परंतु वह मक्खीपर हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ यह गणेश तेजमें श्रीकृष्णके ही समान है। अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं। इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है।

यों कहकर पार्वती क्रोधवश उन परशुरामको मारनेके लिये उद्यत हो गयीं। तब परशुरामने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके अपने इष्टदेव श्रीकृष्णका स्मरण किया। इतनेमें ही दुर्गाने अपने सामने एक अत्यन्त बौने ब्राह्मण-बालकको उपस्थित देखा। उसकी कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। उसके दाँत स्वच्छ थे। वह शुक्ल वस्त्र, शुक्ल यज्ञोपवीत, दण्ड, छत्र और ललाटपर उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए था। उसके गलेमें तुलसीकी माला पड़ी थी। उसका रूप परम मनोहर था, मुखपर मन्द मुसकान थी और वह रत्नोंके बाजूबंद, कङ्कण और रत्नमालासे विभूषित था। पैरोंमें रत्नोंके नूपुर थे। मस्तकपर बहुमूल्य रत्नोंके मुकुटकी उज्ज्वल छटा थी और कपोलोंपर रत्ननिर्मित दो कुण्डल झलमला रहे थे, जिससे उसकी विशेष शोभा हो रही थी। वह भक्तोंका ईश और भक्तवत्सल था तथा भक्तोंको बायें हाथसे स्थिरमुद्रा और दाहिने हाथसे अभयमुद्रा दिखा रहा था। उसके साथ नगरके हँसते हुए बालक और बालिकाओंका समूह था और कैलासवासी आबालवृद्ध सभी उसकी ओर हर्षपूर्वक देख रहे थे। उस बालकको देखकर पुत्रों तथा भृत्योंसहित शम्भुने घबराकर भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् दुर्गाने भी दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर नमस्कार किया। तब बालकने सबको अभीष्टप्रद आशीर्वाद दिया। उसे देखकर सभी बालक भयके कारण महान् आश्चर्यमें पड़ गये। तदनन्तर शिवजीने भक्तिपूर्वक उसे षोडशोपचार समर्पित करके उस परिपूर्णतमकी वेदोक्त-विधिसे पूजा की और फिर सिर झुकाकर काण्वशाखामें कहे हुए स्तोत्रद्वारा उन सनातन भगवान्‌की स्तुति की। उस समय उनके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। पुनः जो रत्नसिंहासनपर आसीन थे और अपने उत्कृष्ट तेजसे जिन्होंने सबको आच्छादित कर रखा था, उन वामन भगवान्‌से स्वयं शंकरजी कहने लगे।

शंकरजीने कहा—ब्रह्मन्! जो आत्माराम हैं, उनके विषयमें कुशलप्रश्न करना अत्यन्त विडम्बनाकी बात है; क्योंकि वे स्वयं कुशलके आधार और कुशल-अकुशलके प्रदाता हैं। श्रीकृष्णकी सेवाके फलोदयसे आज आप जो मुझे अतिथिरूपसे प्राप्त हुए हैं, इससे मेरा जन्म सफल और जीवन धन्य हो गया। कृपासागर परिपूर्णतम श्रीकृष्ण लोगोंके उद्धारके लिये पुण्यक्षेत्र भारतमें अपनी कलासे अवतीर्ण हुए हैं। जिसने अतिथिका आदर-सत्कार किया है, उसने मानो सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा कर ली; क्योंकि जिसपर अतिथि प्रसन्न हो जाता है, उसपर स्वयं श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे, सर्वस्व दान करनेसे, सभी प्रकारके व्रतोपवाससे, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण करनेसे, सभी प्रकारकी

तपस्याओंसे और नित्य-नैमित्तिकादि विविध कर्मानुष्ठानोंसे जो फल प्राप्त होता है—वह अतिथिसेवाकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकता। अतिथि जिसके गृहसे निराश एवं रुष्ट होकर चला जाता है, उसका पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! शंकरके वचन सुनकर जगत्पति स्वयं श्रीहरि संतुष्ट हो गये और मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा उनसे बोले।

विष्णुने कहा—शिवजी! आप लोगोंके कोलाहलको जानकर कृष्णभक्त परशुरामकी रक्षा करनेके लिये इस समय मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ; क्योंकि इन कृष्णभक्तोंका कहीं अमङ्गल नहीं होता। गुरुके कोपके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओंमें मैं हाथमें चक्र लेकर उनकी रक्षा करता रहता हूँ। गुरुके रुष्ट होनेपर मैं रक्षा नहीं करता; क्योंकि गुरुकी अवहेलना बलवती होती है। जो गुरुकी सेवासे हीन है, उससे बढ़कर पापी दूसरा नहीं है। अहो! जिसकी कृपासे मानव सब कुछ देखता है, वह पिता सबके लिये सबसे बढ़कर माननीय और पूजनीय होता है। वह मनुष्योंके जन्म देनेके कारण जनक, रक्षा करनेके कारण पिता और विस्तीर्ण करनेके कारण कलारूपसे प्रजापति है। उस पितासे माता गर्भमें धारण करने एवं पालन-पोषण करनेसे सौगुनी बढ़कर वन्दनीया, पूज्या और मान्या है। वह प्रसव करनेवाली वसुन्धराके समान है। अन्नदाता मातासे भी सौगुना वन्दनीय, पूज्य और मान्य है; क्योंकि अन्नके बिना शरीर नष्ट हो जाता है और विष्णु ही कलारूपसे अन्नदाता होते हैं। अभीष्टदेव अन्नदातासे भी सौगुना श्रेष्ठ कहा जाता है। किंतु विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे भी सौगुना बढ़कर है। जो अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित हुए समस्त पदार्थोंको ज्ञानदीपकरूपी नेत्रसे दिखलाता है, उससे बढ़कर बान्धव कौन है? गुरुद्वारा दिये गये मन्त्र और तपसे अभीष्ट सुख, सर्वज्ञता और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है; अतः गुरुसे बढ़कर बान्धव दूसरा कौन है? गुरुद्वारा दी गयी विद्याके बलसे मनुष्य सर्वत्र समयपर विजयी होता है, इसलिये जगत्में गुरुसे बढ़कर पूज्य और उनसे अधिक प्रिय बन्धु कौन हो सकता है? जो मूर्ख विद्यामद अथवा धनमदसे अंधा होकर गुरुकी सेवा नहीं करता, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे लिपायमान होता है; इसमें संशय नहीं है। जो दरिद्र, पतित एवं क्षुद्र गुरुके साथ साधारण मानवकी भाँति आचरण करता है, वह तीर्थस्नायी होनेपर भी अपवित्र है और उसका कर्मोंके करनेमें अधिकार नहीं है। शिव! जो छल-कपट करके माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी और गुरुका पालन-पोषण नहीं करता, वह महान् पापी है। गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही महेश्वरदेव, गुरु ही परब्रह्म, गुरु ही सूर्यरूप, गुरु ही चन्द्र, इन्द्र, वायु, वरुण और अग्निरूप हैं। यहाँतक कि गुरु स्वयं सर्वरूपी ऐश्वर्यशाली परमात्मा हैं। वेदसे उत्तम दूसरा शास्त्र नहीं है, श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा देवता नहीं है, गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ नहीं है और तुलसीसे उत्तम दूसरा पुष्प नहीं है*। पृथ्वीसे बढ़कर दूसरा क्षमावान् नहीं है, पुत्रसे अधिक दूसरा कोई प्रिय नहीं है, दैवसे बढ़कर शक्ति नहीं है और एकादशीसे उत्तम व्रत नहीं है। शालग्रामसे बढ़कर यन्त्र, भारतसे उत्तम क्षेत्र और पुण्यस्थलोंमें वृन्दावनके समान पुण्यस्थान नहीं है। मोक्षदायिनी पुरियोंमें काशी और वैष्णवोंमें शिवके समान दूसरा नहीं है। न तो पार्वतीसे अधिक कोई पतिव्रता है और न गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय है। न तो विद्याके समान कोई

* नास्ति वेदात् परं शास्त्रं न हि कृष्णात् परः सुरः। नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीपरम्॥
(गणपतिखण्ड ४४। ७२)

बन्धु है और न गुरुसे बढ़कर कोई अन्य पुरुष है। विद्या प्रदान करनेवालेके पुत्र और पत्नी भी निस्संदेह उसीके समान होते हैं। गुरुकी स्त्री और पुत्रकी परशुरामने अवहेलना कर दी है, उसीका सम्मार्जन करनेके लिये मैं तुम्हारे घर आया हूँ।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! वहाँ भगवान् विष्णु शिवजीसे ऐसा कहकर दुर्गाको समझाते हुए सत्यके साररूप उत्तम वचन बोले।

विष्णुने कहा—देवि! मैं नीतियुक्त, वेदका तत्त्वरूप तथा परिणाममें सुखदायक वचन कहता हूँ, मेरे उस शुभ वचनको सुनो। गिरिराजकिशोरी! तुम्हारे लिये जैसे गणेश और कार्तिकेय हैं, निस्संदेह उसी प्रकार भृगुवंशी परशुराम भी हैं। सर्वज्ञे! इनके प्रति तुम्हारे अथवा शंकरजीके स्नेहमें भेदभाव नहीं है। अत: मात:! सबपर विचार करके जैसा उचित हो, वैसा करो। पुत्रके साथ पुत्रका यह विवाद तो दैवदोषसे घटित हुआ है। भला, दैवको मिटानेमें कौन समर्थ हो सकता है? क्योंकि दैव महाबली है। वत्से! देखो, तुम्हारे पुत्रका 'एकदन्त' नाम वेदोंमें विख्यात है। वरानने! सभी देव उसे नमस्कार करते हैं। ईश्वरि! सामवेदमें कहे हुए अपने पुत्रके नामाष्टक स्तोत्रको ध्यान देकर श्रवण करो। मात:! वह उत्तम स्तोत्र सम्पूर्ण विघ्नोंका नाशक है।

मात:! तुम्हारे पुत्रके गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र और गुहाग्रज—ये आठ नाम हैं। इन आठों नामोंका अर्थ सुनो। शिवप्रिये! यह उत्तम स्तोत्र सभी स्तोत्रोंका सारभूत और सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाला है। 'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इन दोनों (ग+ण)-के जो ईश हैं; उन परब्रह्म 'गणेश' को मैं प्रणाम करता हूँ। 'एक' शब्द प्रधानार्थक है और 'दन्त' बलवाचक है; अत: जिनका बल सबसे बढ़कर है; उन 'एकदन्त' को मैं नमस्कार करता हूँ। 'हे' दीनार्थवाचक और 'रम्ब' पालकका वाचक है; अत: दीनोंका पालन करनेवाले 'हेरम्ब' को मैं शीश नवाता हूँ। 'विघ्न' विपत्तिवाचक और 'नायक' खण्डनार्थक है, इस प्रकार जो विपत्तिके विनाशक हैं; उन 'विघ्ननायक' को मैं अभिवादन करता हूँ। पूर्वकालमें विष्णुद्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिताद्वारा समर्पित अनेक प्रकारके मिष्टान्नोंके खानेसे जिनका उदर लम्बा हो गया है; उन 'लम्बोदर' की मैं वन्दना करता हूँ। जिनके कर्ण शूर्पाकार, विघ्न-निवारणके हेतु, सम्पदाके दाता और ज्ञानरूप हैं; उन 'शूर्पकर्ण' को मैं सिर झुकाता हूँ। जिनके मस्तकपर मुनिद्वारा दिया गया विष्णुका प्रसादरूप पुष्प वर्तमान है और जो गजेन्द्रके मुखसे युक्त हैं; उन 'गजवक्त्र' को मैं नमस्कार करता हूँ। जो गुह (स्कन्द)-से पहले जन्म लेकर शिव-भवनमें आविर्भूत हुए हैं तथा समस्त देवगणोंमें जिनकी अग्रपूजा होती है; उन 'गुहाग्रज' देवकी मैं वन्दना करता हूँ। दुर्गे! अपने पुत्रके नामोंसे संयुक्त इस उत्तम नामाष्टक स्तोत्रको पहले वेदमें देख लो, तब ऐसा क्रोध करो। जो इस नामाष्टक स्तोत्रका, जो नाना अर्थोंसे संयुक्त एवं शुभकारक है, नित्य तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह सुखी और सर्वत्र विजयी होता है। उसके पाससे विघ्न उसी प्रकार दूर भाग जाते हैं, जैसे गरुड़के निकटसे साँप। गणेश्वरकी कृपासे वह निश्चय ही महान् ज्ञानी हो जाता है, पुत्रार्थीको पुत्र और भार्याकी कामनावालेको उत्तम स्त्री मिल जाती है तथा महामूर्ख निश्चय ही विद्वान् और श्रेष्ठ कवि हो जाता है*।

(अध्याय ४४)

---

*विष्णुरुवाच—
गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

परशुरामको गौरीका स्तवन करनेके लिये कहकर विष्णुका वैकुण्ठ-गमन, परशुरामका पार्वतीकी स्तुति करना

श्रीनारायण कहते हैं— नारद! इस प्रकार पार्वतीको समझा-बुझाकर भगवान् विष्णु परशुरामसे हितकारक, तत्त्वस्वरूप, नीतिका साररूप और परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

विष्णुने कहा—राम! तुमने अकल्याणकर मार्गपर स्थित हो क्रोधवश जो गणेशका दाँत तोड़ डाला है, इससे तुम श्रुतिके मतानुसार इस समय सचमुच ही अपराधी हो। अतएव मेरेद्वारा बतलाये हुए स्तोत्रसे देवश्रेष्ठ गणपतिका स्तवन करके पुनः काण्वशाखामें कहे हुए स्तोत्रद्वारा जगज्जननी दुर्गाकी स्तुति करो। ये जगदीश्वर श्रीकृष्णकी परा शक्ति एवं बुद्धिस्वरूपा हैं। इनके रुष्ट हो जानेपर तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायगी। ये सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। जगत् इन्हींसे शक्तिमान् हुआ है। यहाँतक कि जो प्रकृतिसे परे और निर्गुण हैं, वे श्रीकृष्ण भी इन्हींसे शक्तिशाली हुए हैं। इस शक्तिके बिना ब्रह्मा भी सृष्टिरचनामें समर्थ नहीं हैं। हम—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। द्विजवर! पूर्वकालमें जब असुरोंने देवसमुदायको अपने अधीन कर लिया था, उस भयंकर समयमें ये सती सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे आविर्भूत हुई थीं। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी आज्ञासे इन्होंने असुरोंका वध करके देवताओंका पद उन्हें प्रदान किया। फिर दक्षकी तपस्याके कारण दक्षपत्नीके गर्भसे जन्म लिया। उस जन्ममें सती शंकरकी भार्या हुईं। पुनः पतिकी निन्दाके कारण उस शरीरको त्यागकर इन्होंने शैलराजकी पत्नीके गर्भसे जन्म धारण किया। फिर तपस्या करके योगीन्द्रोंके गुरुके गुरु शंकरको पाया और श्रीकृष्णकी सेवासे श्रीकृष्णके अंशभूत गणपतिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। बालक! जिनका तुम नित्य ध्यान करते हो, क्या उन्हें नहीं जानते? वे भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंशसे पार्वती-पुत्र होकर प्रकट हुए हैं। इसलिये जो मङ्गलस्वरूपा, कल्याणदायिनी, शिवपरायणा, मङ्गलकी कारण और मङ्गलकी अधीश्वरी हैं; उन शिवप्रिया दुर्गाकी तुम हाथ जोड़ सिर झुकाकर शिवाके स्तोत्रराजद्वारा, जिसे पूर्वकालमें त्रिपुरोंके भयंकर वधके अवसरपर ब्रह्माकी प्रेरणासे शंकरजीने स्तवन किया था, उससे स्तुति करो।

नामाष्टार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये । स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम्॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः । तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम्॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः । बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम्॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः । परिपालकं दीनानां हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम्॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम्॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पद्दौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम्॥
विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम् । तद् गजेन्द्रवक्त्रयुतं गजवक्त्रं नमाम्यहम्॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम्॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं तथा कुरु॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम् । त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी॥
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम्॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी विपुलां स्त्रियम् । महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद् ध्रुवम्॥

(गणपतिखण्ड ४४। ८५—९८)

नारद! यों कहकर भगवान् विष्णु शीघ्र ही वैकुण्ठको चले गये। श्रीहरिके चले जानेपर परशुराम हरिका स्मरण करके विष्णुप्रदत्त स्तोत्रद्वारा, जो सम्पूर्ण विघ्नोंका नाशक तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका कारण है; उन दुर्गाकी स्तुति करनेको उद्यत हुए। उन्होंने गङ्गाके शुभजलमें स्नान करके धुले हुए वस्त्र धारण किये। फिर अञ्जलि बाँधकर भक्तेश्वर गुरुको प्रणाम किया। फिर आचमन करके दुर्गाको सिर झुकाकर नमस्कार किया। उस समय भक्तिके कारण उनके कंधे झुके हुए थे, आँखोंमें आनन्दाश्रु छलक आये थे और सारा अङ्ग पुलकायमान हो गया था।

परशुरामने कहा—प्राचीन कालकी बात है; गोलोकमें जब परिपूर्णतम श्रीकृष्ण सृष्टि-रचनाके लिये उद्यत हुए, उस समय उनके शरीरसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ था। तुम्हारी कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। तुम वस्त्र और अलंकारोंसे विभूषित थीं। शरीरपर अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई साड़ीका परिधान था। नव तरुण अवस्था थी। ललाटपर सिंदूरकी बेंदी शोभित हो रही थी। मालतीकी मालाओंसे मण्डित गुँथी हुई सुन्दर चोटी थी। बड़ा ही मनोहर रूप था। मुखपर मन्द मुस्कान थी। अहो! तुम्हारी मूर्ति बड़ी सुन्दर थी, उसका वर्णन करना कठिन है। तुम मुमुक्षुओंको मोक्ष प्रदान करनेवाली तथा स्वयं महाविष्णुकी विधि हो। बाले! तुम सबको मोहित कर लेनेवाली हो। तुम्हें देखकर श्रीकृष्ण उसी क्षण मोहित हो गये। तब तुम उनसे सम्भावित होकर सहसा मुस्कराती हुई भाग चलीं। इसी कारण सत्पुरुष तुम्हें 'मूलप्रकृति' ईश्वरी राधा कहते हैं। उस समय सहसा श्रीकृष्णने तुम्हें बुलाकर वीर्यका आधान किया। उससे एक महान् डिम्ब उत्पन्न हुआ। उस डिम्बसे महाविराट्की उत्पत्ति हुई, जिसके रोमकूपोंमें समस्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं। फिर राधाके शृङ्गारक्रमसे तुम्हारा निःश्वास प्रकट हुआ। वह निःश्वास महावायु हुआ और वही विश्वको धारण करनेवाला विराट् कहलाया। तुम्हारे पसीनेसे विश्वगोलक पिघल गया। तब विश्वका निवासस्थान वह विराट् जलकी राशि हो गया। तब तुमने अपनेको पाँच भागोंमें विभक्त करके पाँच मूर्ति धारण कर ली। उनमें परमात्मा श्रीकृष्णकी जो प्राणाधिष्ठात्री मूर्ति है, उसे भविष्यवेत्ता लोग कृष्णप्राणाधिका 'राधा' कहते हैं। जो मूर्ति वेद-शास्त्रोंकी जननी तथा वेदाधिष्ठात्री है, उस शुद्धरूपा मूर्तिको मनीषीगण 'सावित्री' नामसे पुकारते हैं। जो शान्ति तथा शान्तरूपिणी ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री मूर्ति है, उस सत्त्वस्वरूपिणी शुद्ध मूर्तिको संतलोग 'लक्ष्मी' नामसे अभिहित करते हैं। अहो! जो रागकी अधिष्ठात्री देवी तथा सत्पुरुषोंको पैदा करनेवाली है, जिसकी मूर्ति शुक्ल वर्णकी है, उस शास्त्रकी ज्ञाता मूर्तिको शास्त्रज्ञ 'सरस्वती' कहते हैं। जो मूर्ति बुद्धि, विद्या, समस्त शक्तिकी अधिदेवता, सम्पूर्ण मङ्गलोंकी मङ्गलस्थान, सर्वमङ्गलरूपिणी और सम्पूर्ण मङ्गलोंकी कारण है, वही तुम इस समय शिवके भवनमें विराजमान हो।

तुम्हीं शिवके समीप शिवा (पार्वती), नारायणके निकट लक्ष्मी और ब्रह्माकी प्रिया वेदजननी सावित्री और सरस्वती हो। जो परिपूर्णतम एवं परमानन्दस्वरूप हैं, उन रासेश्वर श्रीकृष्णकी तुम परमानन्दरूपिणी राधा हो। देवाङ्गनाएँ भी तुम्हारे कलांशकी अंशकलासे प्रादुर्भूत हुई हैं। सारी नारियाँ तुम्हारी विद्यास्वरूपा हैं और तुम सबकी कारणरूपा हो। अम्बिके! सूर्यकी पत्नी छाया, चन्द्रमाकी भार्या सर्वमोहिनी रोहिणी, इन्द्रकी पत्नी शची, कामदेवकी पत्नी ऐश्वर्यशालिनी रति, वरुणकी पत्नी वरुणानी, वायुकी प्राणप्रिया स्त्री, अग्निकी प्रिया स्वाहा, कुबेरकी सुन्दरी भार्या, यमकी पत्नी सुशीला, नैर्ऋतकी जाया कैटभी, ईशानकी पत्नी शशिकला,

मनुकी प्रिया शतरूपा, कर्दमकी भार्या देवहूति, वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती, देवमाता अदिति, अगस्त्य मुनिकी प्रिया लोपामुद्रा, गौतमकी पत्नी अहल्या, सबकी आधाररूपा वसुन्धरा, गङ्गा, तुलसी तथा भूतलकी सारी श्रेष्ठ सरिताएँ—ये सभी तथा इनके अतिरिक्त जो अन्य स्त्रियाँ हैं, वे सभी तुम्हारी कलासे उत्पन्न हुई हैं।

तुम मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी, राजाओंके भवनोंमें राजलक्ष्मी, तपस्वियोंकी तपस्या और ब्राह्मणोंकी गायत्री हो। तुम सत्पुरुषोंके लिये सत्त्वस्वरूप और दुष्टोंके लिये कलहकी अङ्कुर हो। निर्गुणकी ज्योति और सगुणकी शक्ति तुम्हीं हो। तुम सूर्यमें प्रभा, अग्निमें दाहिका-शक्ति, जलमें शीतलता और चन्द्रमामें शोभा हो। भूमिमें गन्ध और आकाशमें शब्द तुम्हारा ही रूप है। तुम भूख-प्यास आदि तथा प्राणियोंकी समस्त शक्ति हो। संसारमें सबकी उत्पत्तिकी कारण, साररूपा, स्मृति, मेधा, बुद्धि अथवा विद्वानोंकी ज्ञानशक्ति तुम्हीं हो। श्रीकृष्णने शिवजीको कृपापूर्वक सम्पूर्ण ज्ञानकी प्रसविनी जो शुभ विद्या प्रदान की थी, वह तुम्हीं हो; उसीसे शिवजी मृत्युञ्जय हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली जो त्रिविध शक्तियाँ हैं, उनके रूपमें तुम्हीं विद्यमान हो; अतः तुम्हें नमस्कार है। जब मधु-कैटभके भयसे डरकर ब्रह्मा काँप उठे थे, उस समय जिनकी स्तुति करके वे भयमुक्त हुए थे; उन देवीको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मधु-कैटभके युद्धमें जगत्‌के रक्षक ये भगवान् विष्णु जिन परमेश्वरीका स्तवन करके शक्तिमान् हुए थे; उन दुर्गाको मैं नमस्कार करता हूँ। त्रिपुरके महायुद्धमें रथसहित शिवजीके गिर जानेपर सभी देवताओंने जिनकी स्तुति की थी; उन दुर्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनका स्तवन करके वृषरूपधारी विष्णुद्वारा उठाये गये स्वयं शम्भुने त्रिपुरका संहार किया था; उन दुर्गाको मैं अभिवादन करता हूँ। जिनकी आज्ञासे निरन्तर वायु बहती है, सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं और अग्नि जलाती है; उन दुर्गाको मैं सिर झुकाता हूँ। जिनकी आज्ञासे काल सदा वेगपूर्वक चक्कर काटता रहता है और मृत्यु जीव-समुदायमें विचरती रहती है; उन दुर्गाको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके आदेशसे सृष्टिकर्ता सृष्टिकी रचना करते हैं, पालनकर्ता रक्षा करते हैं और संहर्ता समय आनेपर संहार करते हैं; उन दुर्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके बिना स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण, जो ज्योतिःस्वरूप एवं निर्गुण हैं, सृष्टि-रचना करनेमें समर्थ नहीं होते; उन देवीको मेरा नमस्कार है। जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो; मेरे अपराधको क्षमा कर दो। भला, कहीं बच्चेके अपराध करनेसे माता कुपित होती है।

इतना कहकर परशुराम उन्हें प्रणाम करके रोने लगे। तब दुर्गा प्रसन्न हो गयीं और शीघ्र ही

उन्हें अभयका वरदान देती हुई बोलीं—'हे वत्स! तुम अमर हो जाओ। बेटा! अब शान्ति धारण करो। शिवजीकी कृपासे सदा सर्वत्र तुम्हारी विजय हो। सर्वान्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सदा

तुमपर प्रसन्न रहें। श्रीकृष्णमें तथा कल्याणदाता गुरुदेव शिवमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे; क्योंकि जिसकी इष्टदेव तथा गुरुमें शाश्वती भक्ति होती है, उसपर यदि सभी देवता कुपित हो जायँ तो भी उसे मार नहीं सकते। तुम तो श्रीकृष्णके भक्त और शंकरके शिष्य हो तथा मुझ गुरुपत्नीकी स्तुति कर रहे हो; इसलिये किसकी शक्ति है जो तुम्हें मार सके। अहो! जो अन्यान्य देवताओंके भक्त हैं अथवा उनकी भक्ति न करके निरंकुश ही हैं, परंतु श्रीकृष्णके भक्त हैं तो उनका कहीं भी अमङ्गल नहीं होता। भार्गव! भला, जिन भाग्यवानोंपर बलवान् चन्द्रमा प्रसन्न हैं तो दुर्बल तारागण रुष्ट होकर उनका क्या बिगाड़ सकते हैं। सभामें महान् आत्मबलसे सम्पन्न सुखी नरेश जिसपर संतुष्ट है, उसका दुर्बल भृत्यवर्ग कुपित होकर क्या कर लेगा? यों कहकर पार्वती हर्षित हो परशुरामको शुभाशीर्वाद देकर अन्तःपुरमें चली गयीं। तब तुरंत हरि-नामका घोष गूँज उठा।

जो मनुष्य इस काण्वशाखोक्त स्तोत्रका पूजाके समय, यात्राके अवसरपर अथवा प्रातःकाल पाठ करता है, वह अवश्य ही अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेता है। इसके पाठसे पुत्रार्थीको पुत्र, कन्यार्थीको कन्या, विद्यार्थीको विद्या, प्रजार्थीको प्रजा, राज्यभ्रष्टको राज्य और धनहीनको धनकी प्राप्ति होती है। जिसपर गुरु, देवता, राजा अथवा बन्धु-बान्धव क्रुद्ध हो गये हों, उसके लिये ये सभी इस स्तोत्रराजकी कृपासे प्रसन्न होकर वरदाता हो जाते हैं। जिसे चोर-डाकुओंने घेर लिया हो, साँपने डस लिया हो, जो भयानक शत्रुके चंगुलमें फँस गया हो अथवा व्याधिग्रस्त हो; वह इस स्तोत्रके स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है। राजद्वारपर, श्मशानमें, कारागारमें और बन्धनमें पड़ा हुआ तथा अगाध जलराशिमें डूबता हुआ मनुष्य इस स्तोत्रके प्रभावसे मुक्त हो जाता है। स्वामिभेद, पुत्रभेद तथा भयंकर मित्रभेदके अवसरपर इस स्तोत्रके स्मरणमात्रसे निश्चय ही अभीष्टार्थकी प्राप्ति होती है। जो स्त्री वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक दुर्गाका भलीभाँति पूजन करके हविष्यान्न खाकर इस स्तोत्रराजको सुनती है, वह महावन्ध्या हो तो भी प्रसववाली हो जाती है। उसे ज्ञानी एवं चिरजीवी दिव्य पुत्र प्राप्त होता है। छः महीनेतक इसका श्रवण करनेसे दुर्भगा सौभाग्यवती हो जाती है। जो काकवन्ध्या और मृतवत्सा नारी भक्तिपूर्वक नौ मासतक इस स्तोत्रराजको सुनती है, वह निश्चय ही पुत्र पाती है। जो कन्याकी माता तो है परंतु पुत्रसे हीन है, वह यदि पाँच महीनेतक कलशपर दुर्गाकी सम्यक् पूजा करके इस स्तोत्रको श्रवण करती है तो उसे अवश्य ही पुत्रकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ४५)

सबका स्तवन-पूजन और नमस्कार करके परशुरामका जानेके लिये उद्यत होना, गणेश-पूजामें तुलसी-निषेधके प्रसङ्गमें गणेश-तुलसीके संवादका वर्णन तथा गणपतिखण्डका श्रवण-माहात्म्य

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार परशुरामने हर्षमग्न-चित्तसे दुर्गाकी स्तुति करके पुनः श्रीहरिद्वारा बतलाये गये स्तोत्रसे गणेशका स्तवन किया। तत्पश्चात् नाना प्रकारके नैवेद्यों, धूपों, दीपों, गन्धों और तुलसीके अतिरिक्त अन्य पुष्पोंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। इस प्रकार परशुरामने भक्तिभावसहित भाई गणेशका भलीभाँति पूजन करके गुरुपत्नी पार्वती और गुरुदेव शिवको नमस्कार किया तथा शंकरकी आज्ञा ले वे वहाँसे जानेको उद्यत हुए।

नारदजीने पूछा—प्रभो! परशुरामने जब विविध नैवेद्यों तथा पुष्पोंद्वारा भगवान् गणेशकी पूजा की थी, उस समय उन्होंने तुलसीको छोड़ क्यों दिया? मनोहारिणी तुलसी तो समस्त पुष्पोंमें मान्य एवं धन्यवादकी पात्र हैं; फिर गणेश उस सारभूत पूजाको क्यों नहीं ग्रहण करते?

श्रीनारायण बोले—नारद! ब्रह्मकल्पमें एक ऐसी घटना घटित हुई थी, जो परम गुह्य एवं मनोहारिणी है। उस प्राचीन इतिहासको मैं कहता हूँ, सुनो। एक समयकी बात है। नवयौवन-सम्पन्ना तुलसीदेवी नारायणपरायण हो तपस्याके निमित्तसे तीर्थोंमें भ्रमण करती हुई गङ्गा-तटपर जा पहुँचीं। वहाँ उन्होंने गणेशको देखा, जिनकी नयी जवानी थी; जो अत्यन्त सुन्दर, शुद्ध और पीताम्बर धारण किये हुए थे; जिनके सारे शरीरमें चन्दनकी खौर लगी थी; जो रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित थे; सुन्दरता जिनके मनका अपहरण नहीं कर सकती; जो कामनारहित, जितेन्द्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ और योगीन्द्रोंके गुरु-के-गुरु हैं तथा मन्द-मन्द मुस्कराते हुए जन्म, मृत्यु और बुढ़ापाका नाश करनेवाले श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान कर रहे थे; उन्हें देखते ही तुलसीका मन गणेशकी ओर आकर्षित हो गया। तब तुलसी उनसे लम्बोदर तथा गजमुख होनेका कारण पूछकर उनका उपहास करने लगी। ध्यान-भङ्ग होनेपर गणेशजीने पूछा—'वत्से! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है? माता! यह मुझे बतलाओ; क्योंकि शुभे! तपस्वियोंका ध्यान भङ्ग करना सदा पापजनक तथा अमङ्गलकारी होता है। शुभे! श्रीकृष्ण कल्याण करें, कृपानिधि विघ्नका विनाश करें और मेरे ध्यान-भङ्गसे उत्पन्न हुआ दोष तुम्हारे लिये अमङ्गलकारक न हो।'

इसपर तुलसीने कहा—प्रभो! मैं धर्मात्मजकी नवयुवती कन्या हूँ और तपस्यामें संलग्न हूँ। मेरी यह तपस्या पति-प्राप्तिके लिये है; अतः आप मेरे स्वामी हो जाइये। तुलसीकी बात सुनकर अगाध बुद्धिसम्पन्न गणेश श्रीहरिका स्मरण करते हुए विदुषी तुलसीसे मधुरवाणीमें बोले।

गणेशने कहा—हे माता! विवाह करना बड़ा भयंकर होता है; अतः इस विषयमें मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है; क्योंकि विवाह दुःखका कारण होता है, उससे सुख कभी नहीं मिलता। यह हरि-भक्तिका व्यवधान, तपस्याके नाशका कारण, मोक्षद्वारका किवाड़, भव-बन्धनकी रस्सी, गर्भवासकारक, सदा तत्त्वज्ञानका छेदक और संशयोंका उद्गमस्थान है। इसलिये महाभागे! मेरी ओरसे मन लौटा लो और किसी अन्य पतिकी तलाश करो। गणेशके ऐसे वचन सुनकर तुलसीको क्रोध आ गया। तब वह साध्वी गणेशको शाप देते हुए बोली—'तुम्हारा विवाह होगा।' यह सुनकर शिव-तनय सुरश्रेष्ठ गणेशने भी तुलसीको शाप दिया—'देवि! तुम निस्संदेह असुरद्वारा ग्रस्त होओगी। तत्पश्चात् महापुरुषोंके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी।' नारद! महातपस्वी गणेश इतना कहकर चुप हो गये। उस शापको सुनकर तुलसीने फिर उस सुरश्रेष्ठ गणेशकी स्तुति की। तब प्रसन्न होकर गणेशने तुलसीसे कहा।

गणेश बोले—मनोरमे! तुम पुष्पोंकी सारभूता होओगी और कलांशसे स्वयं नारायणकी प्रिया बनोगी। महाभागे! यों तो सभी देवता तुमसे प्रेम करेंगे, परंतु श्रीकृष्णके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारे द्वारा की गयी पूजा मनुष्योंके लिये मुक्तिदायिनी होगी और मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी। तुलसीसे यों कहकर सुरश्रेष्ठ गणेश पुनः तप करने चले गये। वे श्रीहरिकी आराधनामें व्यग्र होकर बदरीनाथके संनिकट गये। इधर तुलसीदेवी दुःखित हृदयसे पुष्करमें जा पहुँची

और निराहार रहकर वहाँ दीर्घकालिक तपस्यामें संलग्न हो गयी। नारद! तत्पश्चात् मुनिवरके तथा गणेशके शापसे वह चिरकालतक शङ्खचूडकी प्रिय पत्नी बनी रही। मुने! तदनन्तर असुरराज शङ्खचूड शंकरजीके त्रिशूलसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब नारायणप्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयी। यह इतिहास, जिसका मैंने तुमसे वर्णन किया है, पूर्वकालमें धर्मके मुखसे सुना था। इसका वर्णन अन्य पुराणोंमें नहीं मिलता। यह तत्त्वरूप तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। तदनन्तर महाभाग परशुराम गणेशका पूजन करके तथा शंकर और पार्वतीको नमस्कार कर तपस्याके लिये वनको चले गये। इधर गणेश समस्त सुरश्रेष्ठों तथा मुनिवरोंसे वन्दित एवं पूजित होकर शिव-पार्वतीके निकट स्थित हुए।

जो मनुष्य इस गणपति-खण्डको दत्तचित्त होकर सुनता है, उसे निश्चय ही राजसूययज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रहीन मनुष्य श्रीगणेशकी कृपासे धीर, वीर, धनी, गुणी, चिरजीवी, यशस्वी, पुत्रवान्, विद्वान्, श्रेष्ठ कवि, जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, समस्त सम्पदाओंका दाता, परम पवित्र, सदाचारी, प्रशंसनीय, विष्णुभक्त, अहिंसक, दयालु और तत्त्वज्ञानविशारद पुत्र पाता है। महावन्ध्या स्त्री वस्त्र, अलंकार और चन्दनद्वारा भक्तिपूर्वक गणेशकी पूजा करके और इस गणपतिखण्डको सुनकर पुत्रको जन्म देती है। जो मनुष्य नियमपरायण हो मनमें किसी कामनाको लेकर इसे सुनता है, सुरश्रेष्ठ गणेश उसकी सर्भा कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। विघ्ननाशके लिये यत्नपूर्वक इस गणपतिखण्डको सुनकर वाचकको सोनेका यज्ञोपवीत, श्वेत छत्र, श्वेत अश्व, श्वेतपुष्पोंकी माला, स्वस्तिक मिष्टान्न, तिलके लड्डू और देशकालोद्भव पके हुए फल प्रदान करना चाहिये।

(अध्याय ४६)

॥ गणपतिखण्ड सम्पूर्ण ॥